पदार्थ विज्ञान

द्वितीय भाग

विषय सूची

१ लेखक का वक्तव्य— १-१४
२ विषय प्रवेश १
३ पदार्थसामान्य विज्ञान ११
४ द्रव्य १६
५ पाश्चात्य विचार १६
६ द्रव्य संग्रह २०
७ द्रव्यश्रेणी २२
८ क्रियाशीलता २४
९ छाया २४
१० गुण २५
११ गुणपर पाश्चात्यविचार २९
१२ कर्म पदार्थ ३२
१३ कर्म लक्षण ३३
१४ कर्म भेद ३६
१५ उत्क्षेपण ३६
१६ अवक्षेपण ३७
१७ आकुञ्चन ३७
१८ प्रसारण ३७
१९ गमन ३७
२० कर्म प्रयोग ३८
२१ सामान्य ४१
२२ सामान्य परिभाषा ४२
२३ सामान्य स्वरूप ४५
२४ सामान्य भेद ४७
२५ सामान्य और जाति ४९
२६ विशेष ५१
२७ अन्त्यविशेष ५५
२८ समवाय ५६
२९ समवाय सम्बन्ध ६०
३० अभाव ६१
३१ प्रागभाव ६३
३२ प्रध्वंसाभाव ६४
३३ अत्यन्ताभाव ६४
३४ अन्योन्याभाव ६५
३५ अभाव के अंग ६६
३६ साधर्म्य-वैधर्म्य ६८

३७ अस्तित्व	६८	४१ गुणादि साधर्म्य	७२
३८ अभिधेयत्व	६९	४२ द्रव्यत्रय साधर्म्य	७३
३९ ज्ञेयत्व	७०	४३ सामान्यादि साधर्म्य	७३
४० द्रव्यादि साधर्म्य	७१	४४ निष्कर्ष	७४

प्रकाशक का निवेदन

यह पुस्तक सन् १९४८ में लिखी गयी। सन् ४९ में एक बार छपकर तैयार हुई; किन्तु जिस दफ्तरी को बनाने के लिये दी गयी, वह भाग गया और पुस्तक गायब हो गयी। अब यह दुबारा सन् १९५० में तैयार हो सकी है। अतएव विलम्ब के लिये हम क्षमा प्रार्थी हैं।

❀ श्री धन्वन्तरयेनमः ❀

भारतीय पदार्थ विज्ञान

—:०:—

लेखकका वक्तव्य

आयुर्वेद पूर्ण वैज्ञानिक चिकित्सा है। आयुष्य क्या है? उसका स्वरूप कैसा है, स्वास्थ्य क्या है और उसकी रक्षा कैसे की जा सकती है? स्वास्थ्यरक्षा करते हुए आयुष्यकी रक्षा और वृद्धि किस प्रकार की जा सकती है? इन सभी बातोंके लिये आयुर्वेदका दार्शनिक रहस्य जानना आवश्यक है। प्राकृतिक उपायोंसे, विना औषधिप्रयोगके किस प्रकार मनुष्य स्वास्थ्य-सम्पन्न रह सकता है, यह आयुर्वेदका प्रारम्भिक और मूल उद्देश्य है। आयुर्वेदका आरम्भ ही "अथातो आयुष्य कामीय-मध्यायं व्याख्यास्यामः" से होता है। स्वास्थ्य सम्पन्न रह आयुष्यकी रक्षा करते हुए धर्म, अर्थ, कामकी सिद्धिके साथ मोक्षसाधनकी सिद्धि करना आयुर्वेदका परम पुरुषार्थ है। मोक्षसाधन करने वाले साधकको यह जानना ही चाहिये कि मैं कौन हूं, मेरा जन्म क्यों हुआ है, मेरा जन्म देने वाला कौन है, जन्मदाताका जन्म देने में उद्देश्य क्या है और मेरा परम लक्ष्य क्या है? इसके साथ ही पुरुष, प्रकृति, आत्मा और पर-मात्माका प्रश्न सामने आता है। क्योंकि आत्माका परमात्मामें

मिल जाना ही मोक्ष है। साधकको स्वस्थ रहनेके लिये शरीर-संचालन शक्तियों और धातुओंका ज्ञान होना चाहिये। उपयुक्त आहार-विहारका निर्णय करनेके लिये पदार्थ और द्रव्योंका ज्ञान होना चाहिये। किस प्रकार पदार्थोंकी सिद्धि होती, किस प्रकार द्रव्योंमें गुण-क्रियाका आधान होता है और किस प्रकारकी प्रकृतिके पुरुषके लिये किस प्रकारके द्रव्य स्वास्थ्योपयोगी होते हैं, वह सभी बातें आयुर्वेद विज्ञानसे सम्बन्ध रखती हैं। हमारे यहां विज्ञान दर्शनका अनिवार्य अङ्ग है। अतएव आयुर्वेदका विज्ञान जानने के लिये भारतीय दर्शनका ज्ञान नितान्त आवश्यक है।

आयुर्वेद पर न्याय, वैशेषिक, सांख्य और योग दर्शनोंका अमिट प्रभाव पड़ा है। इसीलिये आयुर्वेद ज्ञानके लिये इन दर्शनोंका सामान्य ज्ञान आयुर्वैदिक विद्यार्थीको होना आवश्यक है। यह भी स्मरण रखनेकी बात है कि आयुर्वेदमें दर्शनोंका प्रभाव पड़ा तो किन्तु आयुर्वेद अपना विशिष्ट दर्शन रखता है, उसके दर्शनमें उसकी स्वतन्त्र छाप है; और उसका अपना स्वतन्त्र स्वरूप है। इसीलिये बङ्गालकी संस्कृत परीक्षाओंमें दर्शन-शास्त्रके विद्यार्थियोंको आयुर्वेद दर्शन भी अलगसे पढ़ना पड़ता है और इसके लिये चरकका दर्शनांश पाठ्यक्रममें रखा गया है। भूत पर दृष्टि डाले बिना वर्तमानका सम्यक् विचार नहीं हो सकता और वर्तमानका सम्यक् विचार किये बिना, वर्तमानकी परिस्थितियों पर पूर्ण दृष्टिपात किये बिना भविष्यका खाका तैयार नहीं हो सकता, भविष्य कर्तव्योंका निर्धारण नहीं हो सकता। भूतकालमें हमसे क्या गलतियां हुईं, जिनके फलस्वरूप हमारा वर्तमान हमारे उत्कर्षके लिये उतना प्रभावोत्पादक नहीं

हो गया और वर्तमानमें हमें अपना भविष्य गौरवमय बनाने के लिये क्या कर्तव्य है, यह निश्चय होना आवश्यक है। हम चाहते हैं कि आयुर्वेदका-शुद्ध आयुर्वेदका-वैज्ञानिक आयुर्वेद का पठन पाठन पूर्ण रूपसे हो, जिससे आयुर्वेद देश भरका प्रधान चिकित्साशास्त्र स्वीकृत हो सके, आयुर्वेद राष्ट्रीय चिकित्सा विज्ञान बन सके, यही नहीं अपने उच्च वैज्ञानिक प्रभावके कारण वह विश्वका मार्ग प्रदर्शक बन सके, विश्वके लोगोंको स्वास्थ्य-रक्षा और शरीर रक्षाके शुद्ध साधन और विचार बतला सके। वह अपना जगद्गुरुत्व एक बार फिर प्रस्थापित कर सके। इसलिये आयुर्वेदके वैज्ञानिक रहस्यको सर्वसाधारणके सामने रखना हमारा पवित्र कर्तव्य हो जाता है।

जब हमें केवल अपने अस्तित्वके लाले पड़े थे, हमें अपनी चिकित्साकी उपयोगिता प्रकट कर उसे प्रचलित रखनेकी आवश्यकता थी, तब हमने अपने पाठ्यक्रमके साथ जटिल वैज्ञानिक अंशोंको रखना उचित नहीं समझा था। किन्तु ज्योंही आयुर्वेद का महत्व प्रकट हो चुका, जनताने उसकी ओर ध्यान देना आरम्भ किया और "आयुर्वेद विद्यापीठ" की भिषक, आयुर्वेद विशारद और आयुर्वेदाचार्य परीक्षाएं सर्वमान्य होने लगीं, त्योंही वैद्य सम्मेलनने आयुर्वेद विद्यापीठके आयुर्वेद-विशारद परीक्षाके पाठ्यक्रममें तर्कसंग्रह और सांख्य तत्त्व कौमुदीका समावेश किया। अन्तमें हिन्दू विश्वविद्यालय और बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनके पाठ्यक्रममें पाश्चात्य विज्ञान और रसायन-फिजिक्स और कैमिस्ट्रीका अनिवार्य रूपसे समावेश हुआ, तबसे इस बातकी अत्यधिक आवश्यकता

प्रतीत होने लगी कि विद्यार्थियोंमें यह धारणा बद्धमूल न होने पावे कि पाश्चात्य विज्ञान ही सर्वस्व है, भारतमें अपना कोई विज्ञान नहीं है। मैं आधुनिक पदार्थविज्ञानके महत्वको कम नहीं करना चाहता। अपने प्रयोगोंके द्वारा उसने जो चमत्कारिक भौतिक उन्नति की है, उसका अपना अलग मूल्य है और वह बहुमूल्य है। किन्तु गम्भीरता पूर्वक देखा जाय तो मालूम पड़ेगा कि वर्तमान भौतिक विज्ञान स्थूलताको लेकर उन्नत हुआ है। उसकी सूक्ष्म वैज्ञानिक तह भारतीय विज्ञानके अन्तर्गत मालूम पड़ेगी। किस प्रकार परमात्मासे आत्मा और आत्मासे सृष्टि तथा सृष्टिगत पदार्थोंकी सृष्टि हुई; सूक्ष्मसे किस प्रकार स्थूलकी उत्पत्ति और वृद्धि हुई यह जाननेके लिये भारतीय पदार्थ विज्ञानका जानना आवश्यक है। भारतीय पदार्थविज्ञानका अनुशीलन करनेसे पता लगेगा कि भारतीय पदार्थ विज्ञान आधुनिक पदार्थविज्ञानकी पृष्ठभूमि है। भारतीय पदार्थ-विज्ञान विज्ञानरूपी विस्तृत महलकी नींव है। इस नींव पर चाहे जैसी पदार्थ विज्ञान सम्बन्धी इमारत बना लीजिये। जब तक विद्यार्थीको भारतीय पदार्थ विज्ञानका बोध न हो तब तक वह आधुनिक पदार्थविज्ञान पढ़कर भी भारतीयत्वका अनुभव नहीं कर सकता, आत्म गौरवका अनुभव नहीं कर सकता। भारतीय पदार्थ विज्ञानको पढ़कर विद्यार्थी अनुभव करेगा कि जो आधुनिक पदार्थ विज्ञान है वह भले ही विशाल वट वृक्षके रूपमें हो; किन्तु वटवीजरूपसे-सूक्ष्मरूपसे-वह अपने यहां विद्यमान है। दो हजार वर्षोंसे भारत राजकीय क्रान्ति और उथल पुथलके कारण समुचित शान्तिका वातावरण नहीं पा सका। इसलिये भारतीय विद्वान अपने विज्ञानको पल्लवित नहीं कर सके। अब समय आ गया है कि अपनी

पुरानी पूंजीका पता लगाकर हम अपना राष्ट्रीय कोष बढ़ाने का प्रयत्न करें। अपने विज्ञानोपवनको साफ कर उचित क्यारियां बना दें, खाद और जलसिंचनका प्रबन्ध कर उसे सुपल्लवित, सुपुष्पित कर सुफल प्रदान करने योग्य बना दें।

इसी विचारने मुझे इस बातके लिये प्रेरित किया कि बोर्ड आफ इण्डियन मेडिसिनके पाठ्यक्रममें आधुनिक विज्ञानके साथ ही भारतीय विज्ञानका भी विषय रखा जाय। सन् १९४१-४२ में जब बोर्डका नया पाठ्यक्रमसंशोधित हुआ, तब मेरा यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया और इस विषयका पाठ्यक्रम तैयार करना भी मेरे ऊपर ही छोड़ा गया। अवश्य ही इस प्रस्तावके पहले ही जब मेरे हृदयमें इसका विचार हिलोड़ें मार रहा था तब मैंने बम्बईके आयुर्वेद मार्तण्ड पण्डित यादवजी त्रिकमजी आचार्यसे इस विषयका परामर्श किया था वे उस समय मेरे यहां आकर ठहरे हुए थे। उन्होंने ऐसे पाठ्यक्रमकी एक रूपरेखा सुझायी थी। वही रूपरेखा उस समय मेरे पाठ्यक्रम की आधार शिला बनी। यह तो हुआ किन्तु इसके लिये उपयुक्त पुस्तक कहांसे आवे ? चरक और सुश्रुतमें यत्र तत्र वैज्ञानिक अंश हैं अवश्य परन्तु वे कई भागोंमें बिखरे हुए हैं। चरककी जल्प कल्पतरु टीका बहुत जटिल है, अन्य टीकाओंको संकलित किये बिना काम नहीं बन सकता। स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें श्री देवराजकृत "भारतीय दर्शन शास्त्रका इतिहास" सम्पूर्ण दर्शनोंका इतिहास है। पण्डित बलदेव उपाध्यायका "भारतीय दर्शन" विभिन्न धाराओंका सांगोपाङ्ग संक्षिप्त विवेचन है। उसमें आयुर्वेद दर्शनकी दृष्टिसे ज्ञान सम्पादनकी गुंजाइश नहीं है। पण्डित नारायण दत्त कृत आयुर्वेद दर्शन संस्कृतमें होनेसे हिन्दी विद्यार्थियोंके लिये अधिक सरल नहीं। पण्डित महादेव चन्द्र-

शेखर पाठककी पुस्तक अवश्य हिन्दीमें होनेसे कामके लायक है; किन्तु उसमें विषय विभाग पाठ्यक्रमकी सुविधाके अनुरूप नहीं। लहरिया सरायसे प्रकाशित न्याय और वैशेषिक दर्शनकी पुस्तकें अपने विषयमें उत्तम हैं; परन्तु आयुर्वैदिक विद्यार्थियोंके लिये उनका आयुर्वैदिक दृष्टिसे उतना अच्छा उपयोग न हो सकेगा। अतएव इस विषयकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि आयुर्वैदिक विद्यार्थियों और वैद्योंके अनुकूल एक पुस्तककी रचना होनी चाहिये। इसी बीच सन् १९४१ के दिसम्बरमें मुझे हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अबोहर अधिवेशनमें विज्ञान परिषद्का सभापतित्व करना पड़ा और उसका भाषण तैयार करनेके लिये कुछ ग्रन्थोंका अवलोकन भी करना पड़ा। उस समयके भाषणको लोगोंने पसन्द किया और माननीय राजर्षि पुरुषोत्तम दासजी टण्डन और माननीय बाबू सम्पूर्णानन्द जीने उसकी प्रशंसा की। उस समय इस विचारने और भी जोर मारा कि इस विषयकी पुस्तक लिख डालनी चाहिये। यह झिझक अवश्य थी कि यह मेरा मुख्य और अभ्यस्त विषय नहीं है। अतएव इस विषयकी निर्भ्रान्त और सर्वोत्तम पुस्तक लिखना मेरे लिये सम्भव न होगा। किन्तु बिलकुल न होनेसे कुछ होना अच्छा है और जब तक किसी उपयुक्त विद्वान द्वारा सर्वोत्तम पुस्तकका निर्माण न हो जाय तब तक इससे काम तो चलाया ही जा सकेगा। अतएव पुस्तक लिखनेकी प्रवृत्ति बलवती हुई।

आरम्भमें यह विचार अवश्य था कि विद्यार्थियोंको अधिक दार्शनिक झमेलेमें डालना ठीक नहीं; जब देखा गया कि आयुर्वेदकी वैज्ञानिकता पर प्रहार हो रहा है और आयुर्वैदिक विद्यार्थियों पर आधुनिक विज्ञानका ही रङ्ग चढ़नेका समय आ

गया है, तब आयुर्वेद विज्ञानको भी संकलित कर एक सङ्गठित स्वरूप देना आवश्यक हुआ। सन् १९४८ के ग्रीष्म कालमें आरा निवासी सुप्रसिद्ध साहित्य प्रेमी बाबू निर्मल कुमार जैन रईसकी चिकित्साके सिलसिलेमें मुझे कलिमपोंगमें महीने डेढ़ महीने रहनेकी आवश्यकता पड़ी। बाबू साहबने एक स्वतन्त्र बङ्गलेकी व्यवस्था कर एकान्त और सुरम्य स्थानका प्रबन्ध कर दिया। भोजन सामग्री, दूध, घी, शाक सब्जीकी चिन्तासे भी आपने विमुक्त कर दिया। आपके सुपुत्र बाबू सुबोध कुमार जैनने कागज कलम स्याही आदि पढ़ने लिखनेकी सामग्रीकी पूर्ति की। बाबू साहबकी बुद्धिमती सुशीला पत्नी तथा उनके सहायकोंके कारण कोई चिन्ता नहीं रही। अतएव महीने सवा महीनेमें पदार्थ विज्ञान, द्रव्य विज्ञान, गुण विज्ञान और प्रमाण विज्ञानके भाग लिखे जा सके। कलिमपोंगका अर्थ पर्वतोंकी रानी है, तिस पर निर्मल बाबूका बङ्गला चन्द्रलोकमें है। जब कभी आसमान साफ रहता है तब किंचिझंघा पर्वतका बर्फसे ढका हुआ रजत दृश्य मनको मोहित करता है। इसके उत्तरमें शिकम, पूर्वमें भूटान, आग्नेयमें आसाम, दक्षिणमें पाकिस्तान पूर्व बङ्गाल, कुछ दक्षिण और नैऋत्य और पश्चिम लिये बिहार, दार्जिलिङ्ग और वायव्यमें नैपाल है। प्राकृतिक सौन्दर्यका खजाना है। ऐसी जगहमें रहकर इस जटिल दार्शनिक ग्रन्थको लिखना सम्भव हुआ। इसके लिये बाबू निर्मल कुमार जी और उनके सुपुत्र बाबू सुबोध कुमारजी सर्व प्रथम धन्यवादके पात्र हैं। पुस्तककी विषय सूचीका अनुक्रम पण्डित शुकदेव पाण्डेय एम० ए० आयुर्वेदाचार्य प्रिंसपल राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज इन्दौर वालोंने सुझाया था इसके लिये वे भी धन्यवादके पात्र हैं। घरका प्रबन्ध मध्यम पुत्र चि० योगीन्द्र चन्द्रने सँभाल कर

निश्चिन्त किया, ज्येष्ठ पुत्र चि० हरिश्चन्द्रने कलिमपोंगमें समय समय पर विषय संकलनके भाग सुझाकर सहायता पहुँचायी। छोटे पुत्र चि० राजेन्द्र चन्द्र शुक्ल और महोवाके पं० रामचरण मिश्रके कारण भोजन व्यवस्थाकी चिन्ता नहीं रही। अतएव मनोयोग पूर्वक पुस्तक लेखनका काम चल सका। हां, एक वेदन अवश्य था। कलिमपोंगमें कोई अच्छा पुस्तकालय नहीं मिला और साथमें अधिक पुस्तकें ले जाना सम्भव नहीं हुआ। अतएव कभी कभी कलम रुक जाती थी, घण्टों सोचना पड़ता था। तथापि ईश्वरकी कृपासे पुस्तक तैयार हो गयी यह प्रसन्नता की बात है।

पुस्तक प्रणयनमें इस बातका ध्यान रखा गया है कि प्रमाण और उद्धरण यथा सम्भव आयुर्वेदके विशेषकर चरक या सुश्रुतके हों। किन्तु विषयकी पुष्टिके लिये अन्य दर्शनोंकी भी सहायता ली गयी है। जहां आयुर्वेदमें किसी विषय या विषयांशका उल्लेख संक्षिप्त था वहां उसकी पूर्तिका यथासाध्य प्रयत्न किया गया है। पूर्तिकी प्रामाणिकता अन्य दर्शनोंके उद्धरण देकर प्रतिपादित की गयी है। विषयको स्पष्ट करनेके लिये जहां तहां यूरोपीय वैज्ञानिकोंके विचार भी दे दिये गये हैं। इससे भी यह मालूम पड़ेगा कि भारतीय दार्शनिकोंके विचारोंका प्रभाव यूरोपीय विद्वानोंमें भी कहां तक पड़ा है; और वहांके विद्वानोंने स्वतन्त्र विचार कर अपने देशकी परिस्थितिके अनुरूप किस प्रकार दार्शनिक विचारोंकी गवेषणा और पूर्ति की है। पाश्चात्य विज्ञानमें हमारे इस "पदार्थकी" समताका कोई समपक शब्द नहीं है। तथापि कैटेगोरी (Category) शब्दसे आजकल उसका काम निकाल लिया जाता है। कैटेगोरी शब्द पदार्थ शब्दका अर्थ पूरा नहीं करता। उसका अर्थ है समान वर्ग

अथवा स्वतः सिद्ध कल्पना, जिसका व्यवहार अस्तित्वकी अन्तिम कल्पना धारणा तथा ग्रहणके भावमें होता है। इसके अन्तर्गत अरिस्तूने १० विभागोंका वर्णन किया है। (१) सब्स- टेंसिया (सब्सटेंस) द्रव्य, (२) क्वाण्टीटास (क्वाण्टिटी) परि- माणात्मकगुण (३) क्वालीटास (क्वालिटी) संयोगी गुण (४) रिलेशियो (रिलेशन) सम्बन्ध (५) उबी (प्लेस) स्थान या दिक् (६) क्वाण्टो (टाइम) काल (७) हाबिटास (कण्डीशन) दशा- प्रकार (८) सीटस (सिचुयेशन) स्थिति (९) एक्सियो (एक्टिविटी) कर्म और (१०) पैसियो (पैसिविटी) अकर्म। कणादके "अर्थ" या द्रव्य-गुण और कर्मसे जो वास्तविक वाह्य-विषयक सत्ता सूचित होती है उसे पाश्चात्य विज्ञानका आब्जेक्टिव एक्सि- सटेंस समझना चाहिये। शेष तीन सामान्य-विशेष और सम- वाय तार्किक वर्गीकरण हैं। द्रव्यमें गुण और कर्म समवाय सम्बन्धसे स्थित रहते हैं। सम्बन्ध दो प्रकारका होता है संयोग और समवाय; नैयायिक संयोगको संयोगीका गुण मानते हैं; परन्तु समवाय किसीका गुण नहीं; स्वतन्त्र पदार्थ है। इसे पाश्चात्य वैज्ञानिक रसल भी स्वीकार करता है। पाश्चात्य वैज्ञानिक कर्मके साथ कर्मका अभाव अकर्म (पैसिविटी) भी मानते हैं। सामान्य (जनरल) और विशेष (परटीकुलर) को पाश्चात्य प्रापर्टी या गुण ही मानते हैं। डिसपोजीशन या विन्यास भी गुण ही है। अरिस्तूके बाद काण्टने इन पर गम्भीरता से विचार किया है। वह क्वाण्टिटी गुणको युनिटी (इकाई) प्लूरलिटी-बहु और टोटलिटी-समुदाय शब्दसे विभाजित करता है। क्वालिटी गुणके रियलिटी-वास्तविकता Negation- नकारात्मक और लिमिटेशन-अवधि नामक विभाग करता है। उसका सम्बन्ध भी सब्सटेंटियालिटी, (द्रव्यत्व) कैजुयलिटी

(कार्यकारणभाव) और रिसेप्रोसिटी (अविनाभाव) में और माडलिटी, पासिबिलिटी-सम्भाव्य एवं इमपासिबिलिटी-असम्भाव्य तथा एक्सिस्टेंस (सत्ता) और नानएक्सिसटेंस (असद्भाव) इसी तरह नेसेसिटी (आवश्यकता) और कानटिन्यु-एटी (निरन्तता) में विभाजित है। यदि भारतीय पदार्थ विज्ञान की समुचित पढ़ाई हो तो प्राचीन और आधुनिक विज्ञानकी खाईं दूर हो सकती है; और विज्ञानकी समुचित पूर्ति और समन्वयका काम भी सिद्ध हो सकता है।

हिन्दीमें इस प्रकारकी समुचित अन्य पुस्तक न होनेके कारण विषयको समझानेके लिये उसका विस्तार करना पड़ा है। इससे यह भी भय है कि विद्यार्थियोंके लिये इतना विस्तार उनके लिये अधिक हो जाय। ऐसी दशामें अध्यापकका कर्तव्य है कि विद्यार्थियोंके लिये उपयोगी अंशोंको नोट करा दें। अध्यापकों और स्नातकोत्तर विद्यार्थियोंके लिये तो यह विस्तार सहायकरूप होगा। मेरी यह ७० वर्षकी उमरकी कृति है। कर्तृत्व शक्तिमें जो क्रमशः ह्रास हो रहा है, उससे आगे और क्या कर सकूंगा यह ईश्वराधीन है। मेरी कृति उत्तम या सर्वोत्तम है, इसका दावा मैं नहीं करता; किन्तु आयुर्वेद जगतके विद्यार्थियों और ज्ञान पिपासु भाइयोंकी सेवा के लिये कुछ करते रहनेकी जो सदिच्छा है उसकी प्रेरणासे अब तक कई पुस्तकें लिखी हैं और यह भी उनमें से ही है। मेरी अल्पज्ञताके कारण इसमें प्रमाद और त्रुटियोंकी सम्भावना है। यदि कृपालुपाठक भूलोंकी सूचना देंगे तो उनके सुधारका अवश्य प्रयत्न करूंगा।

यद्यपि आयुर्वेद दर्शनका प्रथम वैज्ञानिक भाग "प्रमाण विज्ञान" है तथापि उसमें दार्शनिक भागकी ही अधिकता है। एक

प्रकारसे वह दर्शन शास्त्रका सूत्र स्थान है, रहस्य विज्ञापक है और दार्शनिक विवादका आधार है। प्राथमिक विद्यार्थियोंके लिये आरम्भमें ही उसकी आवश्यकता नहीं भी हो सकती। इसलिये सबसे पहले हमने पदार्थ विज्ञानका भाग प्रकाशित करना उचित समझा है। यथार्थ अनुभवका नाम प्रमा है, उसका साधन प्रमाण है, प्रमाकी उपलब्धि प्रमाणोंके द्वारा होती है। इसमें पदार्थ ज्ञान प्रमा है और पदार्थ प्रमेय है। पुस्तकके पाठक प्रमाता हैं। सुश्रुतमें पदार्थकी परिभाषा "येऽर्थो अभिहितः सूत्रे पदे वा स पदार्थः, पदस्य पदयोः पदानां वा अर्थः पदार्थः,, लिखी है। इस भागमें उसी पदार्थका विवेचन हुआ है। इसमें द्रव्य सिद्धिके लिये जिन भाव पदार्थोंकी आवश्यकता होती है उनका विवेचन है। द्रव्य सिद्धि इसका एक अङ्ग है और वह अलग है। पदार्थके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न मत हैं। उनकी संख्या भी भिन्न भिन्न मतके अनुसार अलग अलग है। तथापि आयुर्वेद सम्मत द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष और समवाय इन छः पदार्थों पर जोर दिया गया है। जिनके मतसे सप्त पदार्थ हैं, उनके मतसे अभाव भी एक पदार्थ है; अतएव उसका भी इसमें वर्णन है। अनुपलब्धि प्रमाणके द्वारा अभाव प्रत्यक्ष होता है; क्योंकि घटाभावका ज्ञान प्रत्यक्षसे नहीं हो सकता क्योंकि उसमें इन्द्रिय सन्निकर्षका अभाव रहता है। अनुमान और अर्थापत्तिसे भी अभावका ज्ञान (उदाहरणार्थ भूतल पर घट नही है) नहीं हो सकता। उपलब्धि या ग्रहणका अभाव ही अनुपलब्धि है। इस प्रकार प्रमाण विज्ञानमें अभावका उपभोग होता है। अतएव हमने उसका वर्णन कर दिया है। पदार्थका बोध विज्ञानसे होता है ; अतएव पदार्थके साथ ही विज्ञान भी ज्ञानका विषय है; सभी मानसिक अवस्थाएं भौतिक

पदार्थोंको बतलाती हैं। प्रत्येक मानसिक दशाका विषय होता है; अतएव विषय पदार्थ विज्ञान सम्भव है। पदार्थ स्वयं कोई पदार्थ नहीं; किन्तु द्रव्य सिद्धिसमुच्चय ही पदार्थ है। वह पद का अर्थ बताने वाला है। जिसमें द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, जातित्व, व्यक्तित्व, संघटनत्व आदि धर्म हों उसी समुच्चयका नाम पदार्थ है। प्रभाकर द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, पारतन्त्र्य (समवाय), शक्ति, सादृश्य और संख्याको पदार्थ मानते हैं। अभाव और विशेषको प्रभाकर नहीं मानते। इसी तरह कुमारिल द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और अभाव नामक पाँच पदार्थ मानते हैं। विशेषको यह भी पदार्थ नहीं मानते। कोई कोई अन्धकार और शब्दको पदार्थ कहते हैं; किन्तु कुमारिल अन्धकार और शब्दको द्रव्य मानते हैं। कुमारिलके मतसे समवाय पदार्थ नहीं है। किन्तु आयुर्वेदमें समवायकी आवश्यकता प्रतिपादित है। चरकमें "समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः" तथा "यत्राश्रिताः कर्मगुणाः कारणं समवायियत्। तद्द्रव्यं समवायी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः" इसी प्रकार अष्टाङ्ग हृदयमें "अम्बु योन्यग्नि पवन नभसां समवायतः। तन्निर्वृत्ति विशेषश्च व्यपदेशस्तु भूयसा।" कहकर "समवाय" की महत्ता बतलायी गयी है। अतएव आयुर्वेदके लिये उसका वर्णन आवश्यक है। जैन धर्ममें पदार्थकी व्याख्या ही और ढङ्गकी है। जैन धर्म पदार्थके दो अङ्ग शाश्वत और अशाश्वत मानता है। शाश्वत अंशके कारण प्रत्येक वस्तु ध्रौव्यात्मक अर्थात् नित्य

है; और अशाश्वत अंगके कारण प्रत्येक वस्तु उत्पाद-व्ययात्मक अर्थात् उत्पत्ति और विनाशशील-अनित्य है। "उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्" अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होने वाला, नाश होने वाला तथा स्थिर रहने वाला भी होता है। इस प्रकार नित्यानित्य होता है। उसकी दृष्टिमें "अपनी जातिसे च्युत न होना" नित्यत्वका लक्षण है। वस्तुमें परिणाम होने पर भी जातिगत एकता विघटित नहीं होती, अतएव नित्य है। जैन धर्मकी दृष्टि में जगतका नानात्व भी यथार्थ है और एकत्व भी सत्य है। जैन धर्म जीवनके साथ कर्मका सम्बन्ध तथा विच्छेद दिखलाने के लिये सात पदार्थोंका वर्णन करता है; किन्तु वे सात पदार्थ हमारे ग्रन्थ कथित पदार्थोंसे भिन्न हैं। जैन धर्मके सात पदार्थ (१) आश्रव (२) बन्ध (३) संवर (४) निर्जरा (५) मोक्ष (६) जीव और (७) अजीव हैं। किन्तु ये भौतिक पदार्थ विज्ञानके विषय नहीं अध्यात्मके पदार्थ हैं। इसलिये हमने जिन आयुर्वेदाभिमत पदार्थोंका वर्णन किया है वही इस ग्रन्थके लिये अभीष्ट हैं।

पुस्तकको लिखे एक सालसे अधिक हो गया; किन्तु अनेक अड़चनोंसे यह अब तक प्रकाशित न हो सकी। इस बीचमें "वैद्यनाथ प्रकाशन" की ओरसे आयुर्वेदाचार्य पण्डित रामरक्ष पाठक प्रिंसपल अयोध्या शिव कुमारी आयुर्वेद कालेज बेगूसरायकी लिखी "पदार्थ विज्ञान" नामकी एक पुस्तक प्रकाशित

भी हो चुकी है। पुस्तक अच्छी है। इतना होने पर भी हम अपनी लिखी पुस्तकको आयुर्वेद संसारके सामने प्रकट कर देना आवश्यक और उचित समझते हैं। इसलिये नहीं कि यह हमारी है; किन्तु इसलिये कि उसकी उपस्थितिमें भी हमारी पुस्तक पाठकों की ज्ञान पिपासा शान्त करने में सहायक होगी और सफल सहायक होगी। आयुर्वेद जगतमें दोनोंके लिये काफी गुंजाइश है। अतएव दोनों अपना अपना काम करेंगी। आशा है वैद्य समाज पुस्तकको उदारता और गुण-ग्राहकताके साथ अपनावेगा।

प्रयाग।
नागपञ्चमी
सं० २००६ वै०

जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल

———

॥ श्री ॥

पदार्थ-विज्ञान

—: ० :—

श्री सरस्वत्यैनमः
श्री धन्वन्तरयेनमः
श्री सते अरह्मानायनमः

मंगलाचरण

करत सृष्टि रचना विविध रचि पदार्थको मेल ;
जीव-अजीव विभेद किय गुण-गरिमा को खेल ॥
जीव सृष्टि महँ बुद्धि मन ज्ञान प्रवृत्ति बढ़ाय ।
आतमतत्व विचार मिस दर्शन ज्ञान चढ़ाय ।
"निर्मल" बुद्धि "सुबोध" मिलि रचना किय "जगदीश" ।
दर्शन ज्ञान प्रदान हित ईश नवावों शीश ॥
शाखा पल्लव पुष्पफल पूरित विटप समान ॥
शोध-बोध-मोदक बने यह पदार्थविज्ञान ॥

पहला अध्याय

विषय प्रवेश

पदार्थविज्ञानका विषय भारतीय विद्यार्थियोंको पढ़ाया तो जाता है; परन्तु उसमें भारतीयत्वका अभाव रहता है। पदार्थ क्या है, उसकी उत्पत्ति कैसे होती है, इसे जाननेके पहले यह भी जानना आवश्यक है कि यह सृष्टि कैसे उत्पन्न

हुई, इसका कर्ता कौन और भोक्ता कौन है ? पदार्थों की उत्पत्ति की वैज्ञानिकता क्या है, विज्ञान किसे कहते हैं ? आदि बातोंका जब तक समाधान न हो तब तक पदार्थविज्ञान की पढ़ाई कुछ अर्थ नहीं रखती। सृष्टि शब्दका उच्चारण करते ही मनमें यह भावना अवश्य आती है कि इस सृष्टिका विस्तार कैसे और क्यों हुआ ? जीव, अजीव, प्रकृति, पुरुष, शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा, ज्ञान, अज्ञान, यह सब क्या हैं ? मनुष्य जन्म क्यों हुआ है, उसका कर्तव्य क्या है ? इस जिज्ञासाका समाधान जब तक न हो तब तक पदार्थविज्ञान का पाठ अधूरा ही समझना चाहिये। इस जिज्ञासा की पूर्ति आधुनिक विज्ञानसे नहीं हो सकती। उसके लिये भारतीय पदार्थविज्ञान और दर्शन शास्त्रका सामान्य परिचय होना आवश्यक है।

विशेष कर आयुर्वेदके विद्यार्थियोंके लिये इसकी नितान्त आवश्यकता है। आयुर्वेद पूर्ण विज्ञान शास्त्र है। उसका अर्थ ही आयुका वेद अर्थात आयु सम्बन्धी ज्ञान है। जिसमें आयु क्या है, उसका रहस्य क्या है, उसकी रक्षा कैसे की जा सकती है आदि बातोंका समाधान हो और शास्त्रीय ढंगसे विवेचन हो वही आयुर्वेद है। अन्य चिकित्साशास्त्र केवल बीमारी और उनकी चिकित्साकी ही व्याख्या करते हैं; किन्तु आयुर्वेद **जीवनका शास्त्र** होनेके कारण सबसे पहले जीवनका रहस्य बताना चाहता है और फिर उसकी रक्षाके लिये उन कार्यों और उपायोंका उपदेश करता है, जिनसे शरीर आरोग्य रहे और उसमें विकृति और बीमारी होने न पावे। कहा भी है

"हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम्।
मानञ्च तच्च यत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते ॥

आयुके सम्बन्धमें कहा गया है—

शरीरेन्द्रिय सत्वात्म संयोगो धारि जीवितम् ।
नित्यगश्चानुबन्धश्च पर्यायैरायु रुच्यते ॥

अर्थात शरीरमें इन्द्रिय, मन, आत्माका संयोग सहित जीवन हो और वह नित्य चलने वाला अनुबन्ध सहित हो उसे आयु कहते हैं। चिकित्साका विषय इसके बाद आता है। अर्थात स्वास्थ्यके नियमोंका पालन करते हुए आकस्मिक कारणोंसे या नियमोंके पालनमें प्रमाद होनेसे यदि बीमारी हो ही जावें तो उन्हें दूर करनेके लिये निदान और चिकित्साका वर्णन होता है। चिकित्सा द्रव्योंके द्वारा होती है अतएव द्रव्योंके सम्बन्धमें भी समुचित ज्ञान हुए बिना काम नहीं चल सकता। इस प्रकार आयुर्वेदका एक एक विषय गम्भीर विज्ञान पोषक है। जब तक आयुर्वेदका विद्यार्थी उसके विज्ञान विभाग को न जाने तब तक वह सफल चिकित्सक हो नहीं सकता। आयुर्वेदका विद्यार्थी जब सामान्य स्वरुप गुण, सामान्य रुप द्रव्य और सामान्यभूत कर्म तथा विशेषात्मक गुण, विशेषात्मक द्रव्य और विशेषात्मक कर्म इसी प्रकार सामान्य और विशेष समवायका ज्ञान प्राप्त कर लेता है; अर्थात् द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय पदार्थों का साधर्म्य-वैधर्म्यसे तत्व ज्ञान प्राप्त कर अपना और जन साधारणका मैत्रीपरायण हो कल्याण साधन कर सकता, निःश्रेयस साधनमें सहायक हो सकता है तभी उसका वैद्य होना सार्थक होता है। कहा है—

सामान्यं च विशेषं च गुणान्द्रव्याणि कर्म च,
समवायञ्च तज्ज्ञात्वा तन्त्रोक्त विधिमास्थिताः
लेभिरे परमं शर्म जीवितं चाप्यनश्वरम् ।

यह विज्ञान दर्शन शास्त्रका अङ्ग है। दर्शन शब्द "दृश" धातुसे बना है, जिसका अर्थ देखना अर्थात यथार्थ तत्व बोध है। दर्शनशास्त्र ज्ञानका करण अथवा द्वार है। अर्थात जिस शास्त्रमें मानव जीवन सम्बन्धी पुरुषार्थ और कर्तव्य का विवरण हो, तत्व निर्णय हो उसे दर्शनशास्त्र कहते हैं। दर्शन और ज्ञान-शास्त्र पर्यायवाची शब्द हैं। मानवजीव ज्ञान सम्पन्न है उसमें ज्ञानकी ही अन्य जीवों की अपेक्षा विशेषता होती है। यह ज्ञान **आजानिक** और **सम्पाद्य** भेदसे दो प्रकारका होता है। आहार-निद्रा-भय मैथुन सम्बन्धी ज्ञान अन्य जीवधारियोंमें भी होता है और मनुष्य भी बिना किसीके सिखाये इसे जान सकता है, अतएव इसे आजानिक या स्वाभाविक ज्ञान कहते हैं। जिस ज्ञान को मनुष्य अभ्यास और शिक्षा द्वारा प्राप्त करता है, सम्पादन करता है, उसे सम्पाद्य ज्ञान कहते हैं। यद्यपि ग्रन्थ प्रणयनका उद्देश्य प्रायः सम्पाद्य ज्ञानके सम्बन्धमें ही होता है; परन्तु आयुर्वेद आजानिक ज्ञानको भी वैज्ञानिक रूप देनेके लिये आहार-निद्रा और मैथुन सम्बन्धी विषयोंको भी सशास्त्र वर्णन कर मनुष्य जन्मको स्वास्थ्य सम्पन्न बनानेका प्रयत्न करता है और सम्पाद्य ज्ञानका विषय तो मुख्य अभिप्रेत होता ही है। सम्पाद्य ज्ञान भी **ज्ञान** और **विज्ञान** के भेदसे दो प्रकारका होता है। साधारणतः मोक्ष विषयक ज्ञानको ही ज्ञान कहते हैं। किन्तु ज्ञान शब्द इस समय जिस प्रकार व्यापक हो चुका है, उससे इसके अर्थकी व्याप्ति भी स्वभावतः बढ़ गयी है। जिस ज्ञानके द्वारा मनुष्य की पारमार्थिक और व्यावहारिक दासताका परिहार हो, उसकी लाचारी दूर होकर उसमें कार्य कर्तृत्व और कर्तव्य बोध की प्राप्ति हो कर मोक्ष की प्राप्ति हो; स्वातन्त्र लाभ हो, परवशता और दुःखजनक परिस्थितिका परिहार हो वह सब **ज्ञान** है।

ऐहिक तथा पारलौकिक सभी प्रकारके मोक्षका इसमें समावेश समयानुसार हो जाना चाहिये। सांसारिक अन्य सब विषयोंका शास्त्रीय विवेचन जिसमें हो वह सब विज्ञान है। इसमें आचार-शास्त्र (Ethics) सत्ताशास्त्र (onlology) और अन्य प्राकृतिक विज्ञान (Natural Phiolosophy) सम्बन्धी शाखाओंका समावेश होगा। कार्य-कारण ज्ञान और कारणसे कार्यका सम्बन्ध ज्ञान विचार पूर्वक करना विज्ञान है। सावयव और निरवयव पदार्थों का विवेचन, अकृत्रिम या प्राकृत पदार्थ तथा मानवाधीन कृत्रिम पदार्थोंका सशास्त्र ज्ञान विज्ञानका विषय है। तर्कशास्त्र तथा पदार्थ विज्ञान अकृत्रिम विषय हैं, आचारशास्त्र. नीतिशास्त्र, आयुर्वैदिक सद्वृत्त आदि कृत्रिम विज्ञानके विषय हैं। यह सब संवेदन या अनुभवके द्वारा ग्राह्य होता है। इसका विचार स्मृतिके द्वारा होता है; अतएव स्मृति संवेदनका सात्त्यरूप है। सम्पूर्ण इन्द्रिय सम्बन्धी व्यापार इसके विषय हैं। शिल्प-कला और वस्तुशक्ति सम्बन्धी ज्ञान विषय विज्ञानके अन्तर्गत है।

इस प्रकार दर्शन और ज्ञानशास्त्र एक ही कोटिके हैं। प्राचीन भारतीय विद्वानोंने आध्यात्मिक विषयोंका विज्ञान सम्मत जितना विस्तृत, स्पष्ट और बुद्धिग्राह्य वर्णन किया है उतना विश्वके किसी भागमें नहीं हुआ। जिन दर्शनकारोंने वेद और परलोक माना है, उनके दर्शन आस्तिक दर्शन कहलाते हैं। ये दर्शन तीन भाग में विभक्त संख्यामें ६ हैं। पहला विभाग न्यायका है, जिसके आचार्य गौतम और कणाद हैं। दूसरा भाग सांख्यका है, जिसके आचार्य कपिल और पतञ्जलि हैं। तीसरा विभाग मीमांसाका है जिसके आचार्य जैमिनि और व्यास हैं। इसके सिवाय ईश्वर और वेदको न माननेवाले भी चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन हैं, इन्हें नास्तिक दर्शन कहते हैं। यद्यपि आयु-

वेंद दर्शनकी स्वतन्त्र सत्ता है और दर्शनके अभ्यासी लोग चरक वर्णित दर्शनका आस्थाके साथ अभ्यास करते हैं। अतएव आयुर्वेदाभ्यासियोंके लिये वही प्रधान है। तथापि आयुर्वेद दर्शनमें न्याय और सांख्यका विस्तृत प्रभाव है। न्यायशास्त्रके प्रधान आचार्य गौतम हैं। चरकमें अर्थात आयुर्वेद दर्शनके विचारमें प्रमाण, प्रत्यक्ष, अनुमान, व्याप्ति, उपमान, शब्द, प्रमेय, आत्मा, मन आदि पर विचार करते समय न्यायशास्त्र का विचार किये विना काम नहीं चलेगा। विशेष कर विमानस्थान वर्णित दर्शनका विषय तो इससे विशेष सम्बन्धित है। न्यायशास्त्र का दूसरा विभाग कणादकृत वैशेषिक दर्शन है। यह तो पदार्थ, द्रव्य, पंचमहाभूत, आत्मा, मन, गुण, कर्म आदि के विषयोंसे ऐसा ओत-प्रोत है और प्रशस्तपाद भाष्यमें इन विषयोंका ऐसा स्पष्ट वर्णन है कि इसका सहारा लिये विना हमारा आयुर्वेददर्शनका विचार अधूरा ही रहेगा। सांख्यशाखामें भगवान कपिलकृत सांख्य दर्शन है। आयुर्वेददर्शन की इसे मूल-भित्ति समझनी चाहिये। महर्षि पतञ्जलिकृत सांख्य योगशास्त्र का ग्रन्थ है। स्वास्थ्य सम्पादनमें यम-नियम-आसन-प्राणायाम-संयम आदि तथा मानसिक व्याधि निरसनमें चित्त वृत्तिके निरोध और दुःख निवारण सम्बन्धी ज्ञानकी जानकारी वैद्यके लिये आवश्यक है। इसके सिवाय कहा जाता है कि चरक और पतञ्जलि एक ही हैं। ऐसी दशामें भी उनके विचार समझना उपयुक्त है। शेष मीमांसाशास्त्रमें जैमिनिका शास्त्र पूर्व मीमांसा कर्मकाण्ड सम्बन्धी और व्यासकृत उत्तर मीमांसा वेदान्त सम्बन्धी दर्शन है। केवल आयुर्वैदिक विचारसे इसे छोड़ भी सकते हैं। चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शन दर्शनशास्त्रके अभ्यासियोंके लिये तो जानना अनिवार्य है। ये नास्तिक दर्शन केवल इस विचारसे हैं; क्योंकि ये ईश्वर और वेदको नहीं

मानते। किन्तु शास्त्रीय विचारमें उनके पैने तर्कों को समझना कौतूहल का विषय है। हम केवल आयुर्वेदिक विचारके लिये उन्हें छोड़ भी सकते हैं। यों तो यूरोपीय दर्शनके सम्बन्धमें भी कुछ जानकारी हो तो अच्छा ही है। विशेष कर इसलिये कि आर्य दर्शन की अपेक्षा चार्वाक, बौद्ध और जैन दर्शनका प्रभाव यूरोपीय दर्शनशास्त्रियों पर विशेष रूपसे पड़ा है।

इतना समझ लेनेके बाद पदार्थ विज्ञानके विद्यार्थियों को आधुनिक पदार्थविज्ञान की जानकारी अधिक लाभप्रद हो सकती है। भारतीय पदार्थ विज्ञान जाने विना आधुनिक पदार्थविज्ञान का ज्ञान एक भिन्न विषयके रूपमें है और उसका प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। हमारा पदार्थविज्ञान किसी वृक्षकी जड़ और पीड़के रूपमें है। यदि उसके अनुषंगसे आधुनिक विज्ञान सिखाया जाय तो उस वृक्षकी शाखा और पल्लवके रूपमें हो सकता है। उससे उसकी सुखद छायाका सुख प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकारका प्रयत्न होनेसे ही पदार्थ-विज्ञानके विषयका भारतीय करण होना सम्भव है।

पदार्थविज्ञान शब्दमें पदार्थ और विज्ञान दो शब्द हैं। स्वयं पदार्थ शब्दमें भी दो शब्द हैं, पद और अर्थ। "**पद जन्य प्रतीति विषयत्वं पदार्थत्वम्**" अर्थात "पद" को उच्चारण करनेसे जो ज्ञान होता है उसीके विषयको पदार्थ कहते हैं। अर्थात वह वस्तु जिसके लिये शब्दका प्रयोग होता है। जिस वस्तुको कोई नाम दिया जाता है वही पदार्थ है। पदार्थके नामको संज्ञा कहते हैं, संज्ञा उसे ही दी जाती है जिसे हम जानते हैं। विज्ञान शब्दका अर्थ हम पहले दे चुके

हैं। इस प्रकार जिस शास्त्रमें पदार्थोंका वर्णन शास्त्रीय विधिसे हो उसे पदार्थ विज्ञान कहते हैं। अथवा जिसके द्वारा पदार्थों का साधर्म्य और वैधर्म्य जाना जाय उसे पदार्थ विज्ञान कहते हैं।

शास्त्रीय व्यवहारमें वैशेषिक दर्शनको **पदार्थ** कहा जाता है; क्योंकि उसमें विशेषकर पदार्थकी ही व्याख्या की गयी है। महर्षि कणादने तो यहाँ तक कहा है कि इन्हीं पदार्थों के ज्ञानसे निःश्रेयस अर्थात मोक्षकी प्राप्ति हो सकती है।

"धर्म विशेष प्रसूताद् द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-
समवायानां पदार्थानां साधर्म्य वैधर्माभ्यां तत्व ज्ञानान्निःश्रेयसम्।"

जो हो, आधुनिक परिभाषाके अनुसार भी पदार्थ विज्ञानके सम्यक् अध्ययनसे पदार्थ शास्त्रके अज्ञानबन्धनसे मुक्ति होवेगी ही। पदार्थका तत्व जाननेवाला वैद्य ही चिकित्साशास्त्रमें सफलता प्राप्त कर सकता है।

वैशेषिक शास्त्रके अनुसार पदार्थमें १ अस्तित्व २ ज्ञेयत्व और ३ अभिधेयत्व ये तीन लक्षण होना आवश्यक है। ये तीनों समान लक्षण हैं। अर्थात उसका अस्तित्व हो, मौजूदगी हो, जानकारी हो और उसका नामधेय हो। ऐसे पदार्थ "द्रव्य-गुण-कर्म, सामान्य, विशेष समवायः" चरकमें कहे गये हैं और कणादने भी छः बतलाये हैं १ द्रव्य (Substance) २ गुण (Quality) ३ कर्म (Action) ४ सामान्य (Generality) ५ विशेष (Particularty) और ६ समवाय (Inherence) इस विधिसे सभी जाने हुए पदार्थोंका वर्गीकरण हो जाता है। कुछ आचार्योंके मतसे पदार्थ सात हैं और वह सातवाँ पदार्थ "अभाव" है। यथा

"द्रव्यं गुणास्तथा कर्म सामान्यं स विशेषकम्।
समवायस्तथाऽभावः पदार्थाः सप्त कीर्तिताः॥

इन लोगोंका कहना है कि जिस प्रकार किसी पदार्थके होनेका ज्ञान होता है, उसी प्रकार उसके न होनेका ज्ञान भी अपेक्षित है। आरम्भमें पदार्थके लक्षणोंमें पहला लक्षण अस्तित्व बतलाया गया है, जिसका अर्थ पदार्थ की मौजूदगी या भाव आवश्यक है। जिसका भाव है वही सत है, शास्त्रमें सतका ही वर्णन अभीष्ट है, असतका नहीं। अस्तित्व न होना अभाव है। अतएव वह सत नहीं, तब उसके सम्बन्धमें हमें उदासीन होना ही उचित है। यों तो गौतमाचार्यने न्यायसूत्रमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, और निग्रह स्थान नामके १६ पदार्थ गिनाये हैं। किन्तु इन सबका अन्तर्भाव प्रमाण और प्रमेयमें ही हो सकता है। अरिस्तूने पदार्थ (Cata gories) दश माने हैं। जिन्हें वह निर्धारण या निर्णयके विधेय (Predi cates) के साधारण आकारके रूपमें मानता है। अर्थात ये विधेयकी संज्ञाएं हैं। ये हैं द्रव्य, गुण, परिमाण, सम्बन्ध, देश, काल, स्थिति, अवस्था, क्रिया और भोग। एक मतसे भाव और अभावके भेदसे पदार्थ दो माने जाते हैं। हमने अभावको अग्राह्य किया है। किन्तु इसे इस प्रकार समझ सकते हैं कि जो पदार्थ सदा स्थायी रहे, जिसका भाव विद्यमान रहे वह भाव है और जिसका भाव सदा विद्यमान न रहे कुछ समय पर, उसकी विद्यमानता नष्ट हो जाय वह अभाव है। सत और असत भेदसे भी पदार्थ दो माने जा सकते हैं। अथवा मोटे हिसाबसे कहा जा सकता है कि पदार्थ दो हैं: जड़ और चेतन अर्थात सेन्द्रिय और निरीन्द्रिय. अथवा

सजीव और निर्जीव; अथवा स्थावर और जंगम। जो अपनी इच्छा से स्थान परिवर्तन न कर सकें, वे जड़ हैं, निरीन्द्रिय और स्थावर हैं और जो चल फिर सकें, इन्द्रिय समूहके भाव से सजीवताका परिचय दे सकें, इन्द्रियोंकी विद्यमानताके साथ क्रिया कलाप कर सकें वे सजीव, सेन्द्रिय और जङ्गम हैं। हमें पदार्थ विज्ञानमें पदार्थोंकी सत्ताको लेकर विचार करना है। अतएव हम छः पदार्थोंका ही समर्थन करते हैं।

पदार्थ विज्ञानके जिस विभागको आधुनिक कालमें साइंस कहा जाता है उसे भौतिक विज्ञान भी कहते हैं। भौतिक शब्द का उच्चारण करते ही बोध होता है कि इसमें भूमि सम्बन्धी विज्ञान अर्थात इस जगतके सम्बन्धका ज्ञान अभिप्रेत है। दूसरी बात यह कि भूत सम्बन्धी ज्ञानसे भौतिक विज्ञानका बोध होता है। इस जगतका प्रसार पंचमहाभूतों के द्वारा हुआ है। अतएव पंचमहाभूतोंके क्रियाकलापदर्शक जगतका विज्ञान। जगतका अर्थ है गतिमान अर्थात चलते चलते नाशको प्राप्त होने वाला अर्थात कारणोंमें लीन होने वाला। पंचमहाभूतोंके असंख्य विकार ही यह जगत है। जगतकी सृष्टिका आदि कारण ब्रह्म या परमात्मा है। यद्यपि सांख्यकार कपिलने जगतका आदि कारण ब्रह्म को न मानकर प्रकृतिको माना है और ब्रह्मके सम्बन्धमें अपनी उदासीनता व्यक्त की है। तथापि परमात्माकी सत्ता नास्तिकवादके अतिरिक्त सभीको मान्य है। वह परमात्मा सत्य है, विज्ञानमय है और आनन्दमय है। सत्य सदा विज्ञानात्मक होता है अर्थात विज्ञान सत्यका स्वरूप है। जो सत्य और विज्ञानात्मक होगा वह आनन्दमय होगा ही। इसलिये तैत्तरीय उपनिषद्में विज्ञानको भी ब्रह्म का रूप कहा है "विज्ञानं ब्रह्म"। जब अनेक बार हेतु-हेतुम-

ज्ञाव, प्रयोज्य-प्रयोजक भाव और कार्य-कारण भावके रूपमें किसी ज्ञानकी सत्यता सिद्ध हो जाती है तब उसे विज्ञानका नाम मिलता है। इस सिद्धिसे आनन्दकी प्राप्ति होती है। यह आनन्दमय सत्य विज्ञान ब्रह्मरूप, अनादि, अनन्त और असीम है। विज्ञान अपनी अनन्त शाखाओंसे अपनी सत्यता द्वारा जगतका कल्याण किया करता है। किन्तु उसके जानने के उपाय सीमाबद्ध हैं। विज्ञान **अनादि** है तो उसके ज्ञानोपाय **सादि** हैं। विज्ञान **अनन्त** है तो उसको जाननेके साधन **सान्त** हैं। कोई थोड़े ज्ञानकी जानकारीसे अपने प्राप्त ज्ञानको ही अखिल विज्ञान समझ ले तो वह अपनी अज्ञानतासे दूसरे विज्ञानको अवैज्ञानिक कहने का दुस्साहस कर सकता है। हमारे विद्यार्थी समीक्षक ज्ञान प्राप्त कर इस दोषसे बच सकते हैं।

अध्याय दूसरा

पदार्थ सामान्य विज्ञान

पदार्थ विवेचन—पिछले प्रकरणमें पदार्थके सम्बन्धमें भिन्न भिन्न वर्णन किया गया है। रसायन शास्त्रियोंकी दृष्टिमें पदार्थ (Matter) उसे कहते हैं जिसका ज्ञान मनुष्यको इन्द्रियों के सहारे हो सकता हो और जिसमें कुछ वजन और आकार हो। वे लोग पदार्थ की स्थिति तीन प्रकारकी मानते हैं अर्थात घनरूप, द्रवरूप, और वायुरूप। इन तीनमें से किसी एक स्थिति में पदार्थ रह सकता है। पत्थर, कोयला, सोना, चांदी, लकड़ी,

पुस्तक आदि घन(Solid) स्थिति में रहने वाले पदार्थ हैं। दूध, घी, तेल, पारा आदि द्रव (Liquid) स्थितिमें रहते हैं। इसी प्रकार भाफ, वायु और गैस वायुकी स्थितिमें रहने वाले पदार्थ हैं। कुछ पदार्थोंका स्वरूप परिवर्तन इस प्रकार होता है कि वह घन, द्रव और वायु तीनों रूपोंमें रहते हैं। पानी द्रव पदार्थ है; किन्तु शीत योगसे घनरूप होकर वह वर्फ के रूपमें रहता है और उष्णता के योगसे उड़कर भाफके रूपमें दृष्टिगत होता है। इस प्रकार गर्मी, सर्दी, वृष्टि, वायुके झोंके और विद्युत-प्रवाह आदि अनेक कारणोंसे पदार्थोंमें उलट फेर होता रहता है। पदार्थ पुराने होते हैं, लकड़ी जलती है, वर्तन फूटते हैं, पेड़ बढ़ते-सूखते और मरते हैं। पदार्थों के ऐसे हेर फेर पर मनुष्यकी स्वभावतः दृष्टि जाती है, वह सोचता है कि पदार्थों की स्थितिमें किस प्रकार परिणाम होते हैं, वह प्रयोग करता है और पदार्थोंकी स्थितिका अध्ययन कर शास्त्रीय पद्धति लगाकर उसके कारण समझता है। इसी प्रकार सृष्टि-ज्ञान बढ़ता जाता है और पदार्थविज्ञानकी विद्या का प्रसार होता है।

इस प्रकार पदार्थों का फेर बदल दो प्रकार का होता है। एकमें तो परिवर्तन होने पर पदार्थके मूल गुणधर्म कुछ समयके लिये बदलते हैं। जैसे पानीसे वर्फ होता है और फिर वर्फ से पानी हो जाता है। किन्तु दूसरे परिवर्तनमें पदार्थके गुण धर्म एक दम बदल जाते हैं। जैसे किसी लोहेके खीले को गरम करें तो वह गरम हो जाता है और उसके छूनेसे शरीर जल जाता है। उसीको गरम करते रहें तो धीरे धीरे वह लाल हो जाता है और प्रकाशमान हो जाता है। ये दोनों गुण उसमें तभी तक हैं जब तक वह अग्नि पर है; इसके बाद आगसे निकालने पर धीरे धीरे उसमें जिन धर्मोंका आधान हुआ था

वे तिरोहित होते हैं और लोहा अपने पूर्वरूपमें आ जाता है। जैसे पानीसे बर्फ और फिर बर्फसे पानी हो जाता है। इसी तरह यदि किसी गन्धकके टुकड़े को प्रयोगशाला की काचनली (टेस्टट्यूब) में रख कर गरम किया जाय तो वह पिघल जायगा और धीरे धीरे उसका रङ्ग भी बदला हुआ मालूम पड़ेगा; किन्तु यदि आँचका देना बन्द किया जाय तो उसका रङ्ग फिर ज्यों का त्यों हो जायगा और वह घनस्थितमें भी आ जायगा। इस प्रकारके जो क्षणिक फेरफार होते हैं उन्हें **भौतिक** (फिजिकल) परिवर्तन कहते हैं। किन्तु यदि उसी लोहेके खीलेको गरम कर लाल किया जाय और उसे एक संडसीसे पकड़ कर गन्धकके चूरे में रखा जाय तो गन्धक जलने लगेगा और उसमेंसे एक नवीन कलौंस रङ्गका पदार्थ तैयार होगा। वह खीला और गन्धक दोनों नष्ट हो जाते हैं, केवल उससे तैयार हुआ नया पदार्थ शेष रहता है। इस नये पदार्थके गुणधर्म न तो खीलेके समान होते हैं और न गन्धकके ही समान होते हैं। इस प्रकार के जिस फेर बदलसे पदार्थके मूलगुणधर्म नष्ट होकर नये गुण धर्म उत्पन्न हो जाते हैं उसे **रासायनिक परिवर्तन** या केमिकल चेञ्ज कहते हैं। इस प्रकार पदार्थोंके मूलगुणधर्म और सयोगसे उनके फेर बदल तथा गुणधर्म परिवर्तन सहित दूसरा पदार्थ बन जानेकी विद्या रसायनशास्त्र की विद्या है। भौतिक-शास्त्र और रसायनशास्त्रमें इतना निकट सम्बन्ध है कि उन्हें एक दूसरेसे अलग करना कठिन है।

चरकमें लिखा है

यत्राश्रिताः कर्मगुणा कारणं समवायि यत्।
तद् द्रव्यं समावयी तु निश्चेष्टः कारणं गुणः

बिजलीका दौड़ना, आकाशका अनेक रङ्ग बदलना, लोहेमें आकर्षण आना, धातुओंका अग्निके उत्तापमें पिघलना, भी कहा जा सकता है, इसी तरह लोहेमें जंगलगना, वृक्षोंका उगना, तेलका जलना, दूधका फट जाना, फलोंका सड़ जाना रासायनिक परिवर्तनके उदाहरण हैं। कभी कभी एक ही पदार्थ में दोनों तरहके परिवर्तन होते हैं; किन्तु जिस प्रकारके परिवर्तन की विशेषता होती है, वही कही जाती है। कहीं भौतिक परिवर्तन देखनेमें आता है और रासायनिक परिवर्तन छिपा रहता है और वह रासायनिक परिवर्तन दूसरी ही वस्तु बना देता है तब उसका भेद ज्ञात होता है। इस प्रकार पदार्थोंमें अनेक प्रकार के गुण होने पर भी मुख्य दो भौतिक और रासायनिक माने जाते हैं। पदार्थोंमें चमक, रङ्ग, भारीपन, गर्मीसे पिघलनेका गुण, बिजलीके प्रवाहको ले जाना भौतिक गुणके कारण होता है। इसी तरह अग्नि या उष्णताके सयोगसे अथवा अम्ल संयोगसे रासानिक गुणका ज्ञान होता है। प्रकाशसे भी रासायनिक परिवर्तन होता है। जैसे फोटोके प्लेटपर चित्रका उतरना, वृक्षोंका प्रकाशसे बढ़ना। बिजलीके द्वारा सोने चाँदी की कलई दूसरी धातुओंमें हो जाती है। शब्दसे भी एक प्रकारका यान्त्रिक परिवर्तन होता है, ग्रामोफोनमें शब्दसे ही परिवर्तन होता है और अनेक प्रकारके आलाप निकलते हैं। किसी पदार्थका दूसरे पदार्थके साथ घुल जाना या मिल जाना भी रासायनिक परिवर्तनके कारण होता है।

कुछ पदार्थ भौतिक होते हैं और कुछ अभौतिक। आत्मा, बुद्धि, मन, अहंकार, चित्त, काल आदि अभौतिक हैं। इनके अतिरिक्त अन्य जिन पदार्थों का इन्द्रियों द्वारा अनुभव कर सकते हैं वे भौतिक हैं। चाहे वे ठोस हों, चाहे तरल, चाहे वाष्परूपमें हों। अर्थात् चाहे स्थूल हों या सूक्ष्म। इन भौतिक पदार्थोंके

अनेक रूप होते हैं और उनके गुण भी अनेक होते हैं; परन्तु कुछ गुण ऐसे हैं जो उन सबमें सामान्य होते हैं। जैसे आकार और गुरुत्व अर्थात् वजनका होना। पदार्थमें नित्यत्व गुण अर्थात स्थिरताका भी गुण होता है। इन गुणोंके समूहको ही **द्रव्यत्व** कहते हैं। अर्थात जिन पदार्थों में ये गुण हों वे द्रव्य हैं। पदार्थमें नित्यत्व गुण कहनेका यह अर्थ है कि सामान्यतः उसका नाश नहीं होता, स्वरूप परिवर्तन भले ही हो जाय। यदि आप पानीको गरम करें तो भाप बनकर वह उड़ने लगेगा। यदि उस भापको आप किसी पात्रमें संचित करें तो अवशिष्ट जल और भापका वजन लगभग वही होगा जो उस जलका था। पकानेसे पानी जो घटता है वह भापके रूपमें परिणत हो जानेके कारण। जब हम भपकेसे अर्क उतारते हैं तो जलका जो भाग भाप बनकर उड़ता है वही अर्क रूपमें आ जाता है। कुछ जल औषधियोंमें सोखता है, शेष बचा पानी और अर्क प्रायः इतना ही होता है। इसे **द्रव्य स्थिति सिद्धान्त** कह सकते हैं। इस प्रकार पदार्थों से द्रव्यत्वकी प्राप्ति और उनमें गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय की स्थिति होती है। इसीलिये पहले अध्यायमें लिखा गया है कि पदार्थ छः हैं। अब उन छहोंका हम वर्णन करते हैं। अब न्याय और वैशेषिक में एक सातवां पदार्थ "अभाव" भी शामिल किया जा रहा है। यद्यपि वह विवादास्पद है, तथापि इसका भी हम उल्लेख करेंगे।

द्रव्य (Substance)

जो पदार्थ किसी गुण या क्रियाका आधार हो उसे द्रव्य कहते हैं। यद्यपि द्रव्यके समान ही गुण-कर्म-समवाय-सामान्य

और विशेष भी पदार्थ हैं; किन्तु संसारमें पदार्थका पदार्थत्व विशेषकर द्रव्यके द्वारा ही प्रकट होता है। इसलिये पदार्थों में द्रव्य मुख्य पदार्थ है। क्रिया और गुण द्रव्यमें समवेत रहते हैं; अतएव द्रव्य गुण और क्रिया का समवायिकारण कहलाता है; इसीलिये द्रव्य का लक्षण लिखा है कि

क्रिया गुणत्वात् समवायि कारणम्, इति द्रव्य लक्षणम्

समवाय सम्बन्धसे द्रव्यमें तीन लक्षण होते हैं। अर्थात् क्रियावत्वं, गुणवत्वं, और समवायिकारणत्व। उसमें क्रियाशीलता हो, कार्य करने की शक्ति हो, गुणशीलता हो, २० गुणोंमें से किसीकी विद्यमानता हो और सहायक रूपसे समवायिकारणकी उपस्थिति हो। द्रव्यमें क्रिया अर्थात कर्म की उपस्थिति उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण एवं गमनक्रियाके द्वारा समझी जायगी। अर्थात द्रव्यमें ऊपर उठने या नीचे जाने, सिकुड़ने, फैलने और गतिमान होनेकी शक्ति रहनी चाहिये। इसी तरह उसमें नील-पीत-रक्तादि रङ्ग तथा गुरु मन्द-हिम-स्निग्धादि गुणोंकी सत्ता रहनी चाहिये। समवायिकारण द्रव्यकी बनावटमें सहायक होता है। अतएव उसकी उपस्थिति भी अपेक्षित है। गुण द्रव्यमें रहनेसे वह गुण होता है; किन्तु गुण द्रव्यके संयोग अथवा विभागमें कारण नहीं बनता। गुणको दूसरे गुणकी अपेक्षा भी नहीं रहती। कर्म भी द्रव्यका आश्रय कर उसकी प्रवृत्तिमें सहायक होता है। किन्तु उसके संयोग या विभागमें अपेक्षा रहित रहता है।

द्रव्य-गुण-कर्मका **सामान्य कारण** भी द्रव्य ही है। द्रव्य-गुण-कर्मों का सामान्य लक्षण ही उसे अनित्य विद्यमानताका स्वरूप देता है। सजातीय पदार्थों का आरम्भक होना द्रव्य और गुणका **साधर्म्य** है। द्रव्य अन्य द्रव्यके आरम्भक होते हैं, इसी

प्रकार गुण अन्य गुणके आरम्भक होते हैं। द्रव्य के बिना कर्म कर्मसे ही साध्य नहीं होता। द्रव्यके द्रव्यत्वको न कारण नाश कर सकता है और न कार्य नाश करता है; अतएव द्रव्यकी स्थिरता सिद्ध है। कर्म ही अपने विरोधी कर्मसे नष्ट हो जाता है। क्योंकि कर्म द्रव्योंका कारण नहीं होता। कार्य द्रव्य कारण द्रव्योंका **सामान्य कार्य**--है। द्रव्य क्रियावाला और गुणवाला है। इसलिये गुणका विरुद्ध धर्म होनेसे कर्मोंका कार्य रूपी कर्म नहीं हो सकता। ऐसी दशामें पदार्थोंमें एक, दो आदि की संख्या और पृथकत्व, संयोगत्व विभागकी पूर्ति भी नहीं हो सकती। समवायिकारणकी अनुकूलता भी इसलिये अपेक्षित होती है; क्योंकि असमवायसे द्रव्यका सामान्यकार्य रूपी कर्म नहीं हो पाता। अतएव द्रव्यका द्रव्यत्व सबके संयोग-में है। इसलिये गुण-क्रियाका आधार और समवायिकारण द्रव्यका लक्षण कहा गया है। द्रव्यकी उत्पत्ति सृष्टि है और प्रलय उसका नाश है। महाप्रलय तक द्रव्य स्थायी और नित्य है, भौतिकविज्ञान द्रव्योंको परिमाण दृष्टिसे नित्य मानता है रूपसे नहीं। किन्तु अपने आप द्रव्योंसे सृष्टिक्रम नहीं चल सकता। इसीलिये द्रव्यमें क्रिया-गुण और समवायि कारणकी अपेक्षा रहती है। इनकी प्रेरणासे ही द्रव्यमें चलन या आदिक्रिया तथा रुपादिगुणकी प्रतिष्ठा होती है। कार्यशक्ति ही द्रव्यकी शक्ति है। शक्ति भी नित्य है अर्थात न उसकी उत्पत्ति होती और न नाश होता है। उसके रूपका परिवर्तन भले ही हो जाय। उष्णता, बिजली, शब्द, प्रकाश, गति ये सब उसी शक्तिके रूप हैं। यदि कोई वस्तु बड़े वेगसे चल रही हो और उसे एकाएक रोक दिया जाय तो उसमें उष्णता आ जायगी। शक्तिकी इस कार्य शीलता और द्रव्यके समान नित्यत्व-

को भौतिकविज्ञानमें **शक्तिस्थिति सिद्धान्त** कहा जाता है। इसका यह मतलब है कि शक्तिके परिमाणको हम घटा या बढ़ा नहीं सकते हैं; हाँ उसके रूप परिवर्तनशील अवश्य हैं।

पाश्चात्य विचार—द्रव्यके सम्बन्धमें पश्चिमी वैज्ञानिक भी विचार करते आये हैं। अरिस्तू (विक्रमपूर्व ३२८ वर्ष) ने द्रव्यको आकारके साथ पदार्थका कारण माना है। उसकी समझमें इन्हीं दोनों वस्तुओंसे सब कुछ बना है। इनमें भी उसने आकारको प्रधान और द्रव्यको सहकारी माना है। अरिस्तू द्रव्यको वस्तुका अपूर्ण रूप मानता है। क्योंकि आकार पर पहुँचनेके लिये द्रव्यकी प्रवृत्ति होती रहती है। वह कहता है कि आकार वस्तुकी पूर्ण सम्भावना है। जैसे जैसे वे सम्भावनाएं वास्तविकतामें परिणत होती जाती हैं वैसे वैसे पदार्थ अपने पूर्ण स्वरूप या लक्ष्यको प्राप्त होता जाता है। वह आकार को ही वस्तुमें गतिका कारण मानता है। अपूर्ण द्रव्यका अपने पूर्ण आकारमें परिणाम होता है; इसलिये अरिस्तूके दर्शनमें द्रव्य, परिणाम और आकार ये तीन विषय सर्वत्र मिलते हैं। उसके मतमें सब कुछ द्रव्य और आकारसे मिलकर बना है। मनुष्यका शरीर द्रव्य है और आत्मा आकार है। द्रव्यसे उसका सम्बन्ध नहीं है।

पन्द्रहवीं ईस्वी सदीमें टामस ऐकाइनसने जो विचार किया उसमें उसने भाव और अभाव दो पदार्थ माने हैं। मनुष्य, गाय, बैल आदि भाव हैं और दरिद्रता आदि अभाव हैं। भाव पदार्थके दो भेदोंमें द्रव्य (मेटर) और आकार (फार्म) को वह मानता है। उसकी दृष्टिमें आकार वास्तव है और द्रव्य योग्यतामात्र है। आकार जितना ही अपूर्ण होगा, व्यक्तियोंकी संख्या

उतनी ही अधिक होगी, जितनी पूर्णता अधिक होती है, उतनी ही व्यक्ति संख्या कम होती है। ईश्वर पूर्णाकार है, इसलिये वह एक है। फ्रांसका डेकार्ट नवीन दर्शनका पिता माना जाता है। उसके मतमें निरपेक्ष द्रव्य केवल एक ईश्वर है। जीव और मूर्त पदार्थ सापेक्ष रूपसे पदार्थ हैं। द्रव्यके सापेक्ष और निरपेक्ष दो भेद न मानकर वह शुद्ध निरपेक्ष द्रव्य ही मानता है। उसकी समझमें निरपेक्षता ही द्रव्यका लक्षण है। इसलिये वस्तुतः एक ही द्रव्य है, जो स्वयम्भू, अपरिच्छिन्न और अद्वितीय है। इंगलैण्डमें विक्रम संवत १६८८ में लॉक नामका वैज्ञानिक हुआ है, वह द्रव्यको मिश्रित प्रत्ययकी तीन संज्ञाओंमें से एक सबस्टेंसके नामसे कहता है। द्रव्यमें आत्म द्रव्य और प्राकृतिक द्रव्य दोनोंका समावेश होता है। वह इस सबस्टेंस द्रव्यमें ही अनन्त या शाश्वतके विचारके मुख्य गुणोंका अस्तित्व समझता है। जर्मनीमें विक्रम संवत १८२६ में हेगेल नामक विद्वान हुआ है। वह कहता है कि सत और असतके समावेश होने पर भाव बनता है अर्थात् सत और असतके मेलसे परिच्छिन्न सत्ता होती है। शुद्ध गुणसत्ता परिच्छिन्न व्यक्ति होकर परिणाम पाता है और यही परिणाम द्रव्यका मूल है। सत अव्यक्त है, द्रव्य उसीका विकसित रूप है, जिसका ग्रहण शीघ्र हो सकता है। द्रव्यके स्वरूपोंमें परस्पर सम्बन्ध होता है; इसलिये द्वन्द्व रूपसे दोनोंका विकास हुआ है।

द्रव्य संग्रह—शास्त्रकारोंने द्रव्य विभाग करते समय नौ द्रव्य माने हैं। "पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि" अर्थात १ पृथ्वी (Earth) २ आप या जल (Water) ३ तेज या अग्नि (Fire) ४ वायु (Air) ५ आकाश (Ether) ६ काल (Time) ७ दिक (Space) ८ आत्मा

(Self) और ६ मन (Mind)। अग्निवेश इसे द्रव्यविभाग या द्रव्य प्रकार न कहकर **द्रव्य संग्रह** कहते हैं—

खादीन्यात्मा मनः कालो दिशश्च द्रव्य संग्रहः
सेन्द्रियं चेतनं द्रव्यं निरिन्द्रियमचेतनम् ॥

खादीनि अर्थात ख आदि आकाश आदि। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पञ्चभूत तथा आत्मा, मन, काल और दिशा ये नौ द्रव्य संग्रह हैं। यहाँ आत्मासे जीवात्मा, काल से क्षणलव-निमेष-काष्ठा-कला-मुहूर्त, प्रहर, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतुअयन, संवत्सर-युग आदि व्यावहारिक समय, दिक या दिशा पूर्व, दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, ईशान, आग्नेय नैऋत,. वायव्य आदि। यद्यपि आत्मा सबमें प्रधान है;परन्तु चैतन्य पञ्चमहाभूतोंकी श्रोत्रादि इन्द्रियोंके योगसे ही काम करता है; इसलिये उन्हींका पहले उल्लेख किया गया है। इसके बाद आत्मा और फिर मनका उल्लेख हुआ है। क्योंकि शारीरिक क्रियाओंका संचालन आत्मा मनके द्वारा ही करता है। काल और दिशा सर्वत्र परिणामी समवायि हेतुरूप हैं, इसलिये उनका उल्लेख अन्त में हुआ है। ये द्रव्य दो प्रकारके होते हैं, सेन्द्रिय और निरीन्द्रिय। जिनमें चेतनता होती है, जो चैतन्य विकाशी होते हैं वे सेन्द्रिय कहे जाते हैं; क्योंकि इनमें इन्द्रियाँ व्यक्त रुपमें रहती हैं और कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रियोंके द्वारा ये अपनी क्रिया प्रत्यक्ष सम्पादन करते हैं। वृक्षादि स्थावर द्रव्य निरीन्द्रिय अर्थात् प्रत्यक्ष इन्द्रिय विहीन अचैतन्य कहे जाते हैं। यद्यपि वृक्षादि अपनी जड़ोंके द्वारा रस ग्रहण कर बढ़ते और फलते फूलते हैं अर्थात उनमें चैतन्य अप्रत्यक्ष भावसे है तथापि इन्द्रिय प्रत्यक्ष न होनेके कारण ये अपनी चेतनाका विकास नहीं कर सकते।

द्रव्योंकी श्रेणी—आयुर्वेदकी दृष्टिसे कर्म भेदके कारण द्रव्य तीन श्रेणियोंमें विभक्त किये जा सकते हैं। १ कुछ द्रव्य ऐसे होते हैं जो अपने प्रभावसे ही तीनों दोषोंका प्रशमन करते हैं। जैसे आंवला स्वभावसे ही सभी दोषोंका प्रशमनकारी होता है। यहां दोष शब्द से वात, पित्त, कफ दोष तो हैं ही किन्तु दोषों द्वारा दूषित होनेवाले रस-रक्त-मांस-अस्थि-मेद-मज्जा और शुक्रको भी ले सकते हैं। ऐसे द्रव्योंको **दोष प्रशामक** कहते हैं। २ दूसरी श्रेणीमें वे पदार्थ हैं जो उपकारक होते हुए भी अपने स्वभावसे ही धातुओंको दूषित करने वाले हैं। जिनके सेवनसे रस-रक्त-मांस-अस्थि-मेद मज्जा और शुक्रादि धातु दूषित होते हैं। ऐसे द्रव्य **धातुप्रदूषक** कहलाते हैं। जैसे जई, जंगली सावां आदि। ये स्वभावसे ही धातुदूषित करते हैं। तीसरी श्रेणीमें वे द्रव्य हैं जो स्वभावसे ही अपने प्रभाव द्वारा स्वास्थ्यकी रक्षा करते हैं। स्वस्थवृत्तहितकारी होते हैं। ऐसे पदार्थों के सेवनसे नीरोग रह मनुष्य स्वस्थ रहता है। जैसे रक्तशाली-लाल चावल स्वभावसे स्वास्थ्यके लिये हितकारी होते हैं। किसी भी ऋतुमें किसी भी अवस्थामें सेवन करने योग्य होते हैं; ऐसे द्रव्यों को **स्वस्थवृत्तहित** कहते हैं। जो द्रव्य दोष शामक होते हैं उनका उपयोग दोषोंकी प्रकुपितावस्थामें अच्छी प्रकार होता है। जो द्रव्य धातुओंको दूषित करने वाले होते हैं, उनका सेवन नहीं करना चाहिये। किन्तु जो स्वस्थहित द्रव्य हैं वे दोषोंकी साम्यावस्था कायम रखते हैं, शरीरका पालन करते हैं। इस प्रकार कर्म भेदसे द्रव्योंके तीन भेद होते हैं।

किंचिद्दोष प्रशमनं किंचिद्धातु प्रदूषणम्।
स्वस्थवृत्तौहितं किंचित् द्रव्यं त्रिविध मुच्यते ॥

ऊपर जो भेद बतलाया गया वह द्रव्योंके कर्म भेदके कारण होता है । द्रव्य भेदसे भी द्रव्य तीन प्रकारके कहे जाते हैं : १ जांगम २ औद्भिद और ३ पार्थिव । जो द्रव्य संचरणशील प्राणियोंके द्वारा प्राप्त होते हैं, उन्हे जांगम कहते हैं । जैसे मधु, दूध, दही-घी, मक्खन, पित्त, वसा,मज्जा, रक्त, मांस, मूत्र, गोबर, चमड़ा, रेत, अस्थि, स्नायु-तांत-सींग-खुर, नख, बाल, गोरोचन, कस्तूरी, आदि जांगम द्रव्य हैं। सोना, चांदी, लोहा, मण्डूर, तांबा, शीशा, वंग, मैनसिल, पारद, गन्धक, हरताल, तूतिया, गोदन्ती, खड़िया, सेलखरी, चूना, बालू, हीरा, पन्ना, वैक्रान्त, स्वर्णमाक्षिक, नमक, गेरू, सुर्मा आदि पार्थिव द्रव्य हैं । औद्भिद अर्थात जड़ी बूटी; इसके चार भेद हैं । जिन वृक्षोंके फलोंका उपयोग होता है, उन्हें वनस्पति कहते हैं । जैसे आम, अमरूद, जामुन, सेब, नासपाती, आलूबुखारा आदि । २ जिन वृक्षोंके फूल और फल दोनों औषधि प्रयोगके काममें आते हैं उन्हे वानस्पत्य कहते हैं। जैसे धव, गुलाब, कचनार, सेमर, मुचकुन्द आदि। ३ जो जड़ी बूटी फलनेके बाद सूख जाती हैं उन्हें ओषध कहते हैं । जैसे कण्टकारी, अपामार्ग, बला, सरिवन, पिठवन आदि । ४ जिन जड़ी बूटियोंकी लता फैलती है अर्थात जिनकी प्रतान इधर उधर या अन्य वृक्षोंके सहारे फैलती हैं, उन्हें वीरुध कहते हैं । जैसे परवर, कुन्दरू, लौकी, कूष्माण्ड, अंगूर, नेनुवाँ, आदि,

तत्पुन स्त्रिविधं ज्ञेयं जाङ्गमौद्भिद पार्थिवम्
वनस्पति वींरुधश्च वानस्पत्य स्तथौषधी
फलैर्वनस्पतिः पुष्पैर्वानस्पत्यःफलैरपि ।
ओषध्यः फल पाकान्ताः प्रतानै र्वीरुधः स्मृताः ॥

क्रियाशीलता—इस द्रव्य विभागमें जो नौ द्रव्य कहे गये हैं, वे सभी गुणवान हैं अर्थात गुणकी विद्यमानता सभीमें है। किन्तु पृथ्वी,जल,अग्नि, वायु और मन इनमें गुण और क्रिया दोनों हैं, अतएव ये सक्रिय हैं। शेष आकाश, काल, दिक और आत्मामें गुण तो हैं किन्तु क्रिया नहीं है; अतएव क्रियाके अभावमें उनमें क्रियाशीलता नहीं है, इसलिये ये निष्क्रिय हैं।

छाया या अन्धकार—कुछ शास्त्रज्ञोंका मत है कि तम-छाया अथवा अन्धकार भी दशवां द्रव्य है। ऐसे लोगोंका कहना है कि तममें जो नीलापन है वह उसका गुण है और उसमे गमनशीलता भी है जो उसकी क्रियाशीलताको वतलाता है। अतएव नील रूपाश्रयसे उसमें गुण और गतिसे क्रियाश्रय भी है, अतएव वह द्रव्य है। इसका खण्डन करते हुए **न्यायबोधिनी टीकाकार** कहते हैं कि तम द्रव्य नहीं है; क्योंकि उसमें न तो आकाशका गुण शब्द है, न वायुका गुण स्पर्श है, पृथ्वी द्रव्य गन्धवान है, किन्तु तममें गन्ध न होनेके कारण उसमें पृथ्वी तत्वका भी अन्तर्भाव नहीं है। रस और शीतोष्ण स्पर्शका अभाव होनेसे तममें जल तत्व भी नहीं है। उष्णता और तेजका अभाव होनेसे तम अग्नितत्व वाला भी नहीं है। आकाश-काल-दिक और आत्मा स्वयं सक्रिय नहीं; अतएव उसमें सक्रियता लाने वाले अंशोंका जब अभाव है तब उसकी सक्रियता भी स्वतन्त्र नहीं। मनका कोई काम उसमें दिखता नहीं अतएव तम मन वाला भी नहीं। पदार्थमें तेज या प्रकाशका अभाव तम है। तेज उष्ण स्पर्श गुण वाला है अतएव द्रव्य है; किन्तु उसके अभावको द्रव्य कैसे मानेंगे? कणादने भी इसका विरोध करते हुए कहा है—

द्रव्य गुण कर्म निष्पत्ति वैधर्म्याद् अभावस्तमः
वैशेपिकसूत्र ५ । २ । १६

अर्थात तम तेजका अभाव मात्र है। वह न तो द्रव्य है न गुण और न कर्म है। यदि कहा जाय कि उसमें गति है, चलने की क्रिया होती है; तो यह भी भ्रम है; क्योंकि तम स्वयं नहीं चलता।

तेजसो द्रव्यान्तरेणावरणाच्च
वैशेपिक सूत्र ५। २। २०

सूत्रके अनुसार जब तेजका अवरोध या आवरण करने वाला कोई द्रव्य चलता है तब ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी यह छाया भी चल रही है। यथार्थमें वह द्रव्य चलता है और हमें भ्रमसे मालूम पड़ता है कि छाया चल रही है। यथार्थमें गति छायामें नहीं वस्तुमें है। अतएव तममें दिखने वाली क्रिया औपाधिक है, स्वाभाविक नहीं। उसमें जो नीलापन या कालापन दिखता है वह भी भ्रममात्र है। अन्धकार न कोई द्रव्य है, न उसका कुछ रूप है, न गुण है। प्रकाशका अभाव ही अन्धकार है। उसका दिखने वाला नीलत्व या कलौंस रङ्ग आभास मात्र है, उसमें यथार्थता नहीं है। इस प्रकार यह सिद्ध है कि अन्धकार या तम कोई द्रव्य नहीं है।

—गुण (Quality)

द्रव्याश्रय्यगुणवान् संयोगविभागेष्वकारणमनपेक्ष इतिगुण लक्षणम्
वैशेपिक सूत्र १। १। १६

छः पदार्थोंमें दूसरा पदार्थ गुण है। जो द्रव्यके आश्रयमें रहकर द्रव्यके गुणको तो प्रकाशित करे; किन्तु स्वयं अगुणवान हो एवं द्रव्यके संयोग और विभागके विषयमें अनपेक्षा रखे उसे

गुण कहते हैं। इस प्रकार गुण स्वतन्त्र नहीं; किन्तु द्रव्यके आश्रयमें रहता है; स्वतन्त्र और निराधार नहीं रह सकता। इसीलिये उसे द्रव्याश्रयी कहा जाता है। स्वयं गुण होने पर भी गुणको अगुणवान कहा गया है। केवल द्रव्याश्रयी कहनेसे गुणकी परिभाषा पूरी नहीं होती, क्योंकि कभी कभी द्रव्यके आश्रयमें अन्य द्रव्य भी रहता है। जैसे इन्धन या लकड़ीमें अग्नि आश्रय रूपमें रहता है; किन्तु अग्नि स्वयं द्रव्य है, उसे इन्धनका गुण नहीं कह सकते। द्रव्यके आश्रयी कहना पर्याप्त नहीं, ऐसी दशामें गुणके साथ ऐसा विशेषण जोड़ना आवश्यक है जिससे उसमें आश्रित द्रव्योंका अन्तर्भाव न होने पावे। द्रव्य चाहे स्वतन्त्र हो चाहे आश्रित; किन्तु उसमें अपना निजका गुण अवश्य रहेगा। जैसे इन्धनके अग्निमें भी प्रकाश, दाहकता आदि विद्यमान रहते हैं। किन्तु द्रव्यका आश्रयी गुण स्वयं गुणवान नहीं होता वह उस द्रव्यके गुणको ही प्रकाशित करता है। अग्निका गुण उष्णत्व है; किन्तु उष्णत्वका अपना कोई गुण नहीं। अग्नि संयोगसे ही उसमें उष्णत्व है, द्रव्यका सहारा पाये विना उष्णत्व कोई गुण प्रदर्शित नहीं कर सकता। इसी-लिये गुण को अगुणवान कहा गया है। गुणको संयोग और विभागमें अकारण अनपेक्ष कहा गया है। खाली अगुणवान कहनेसे गुणकी परिभाषा पूरी नहीं हो सकती; क्योंकि कर्म भी तो स्वयं अगुणवान है और द्रव्याश्रित भी है। इस प्रकार संयोग-विभागमें अकारण अनपेक्षित्व विशेषण न लगानेसे कर्ममें भी व्याप्ति या धोखा हो जायगा। इस अतिव्याप्ति दोषको बचानेके लिये यह विशेषण लगाया गया! इसका मतलब यह है कि कर्म तो द्रव्यके संयोग और विभागमें कारण होता है किन्तु गुण इस विषयमें लापरवाह है। द्रव्यके संयोग-विभागसे उसका कोई सरोकार नहीं। उसके संयोग-विभागमें गुणका कोई उपयोग

नहीं होता। इस प्रकार गुणका कर्मसे भेद भी लक्षित हो गया और उसकी परिभाषाकी पूर्ति भी हो गयी।

गुणके लक्षण—ऊपर की व्याख्यासे यह स्पष्ट हो गया कि गुणमें तीन लक्षण पाये जाते हैं। एक तो उसमें द्रव्याश्रितत्व होना आवश्यक है, दूसरे वह निर्गुणत्व होता है और तीसरे उसमें निष्क्रियत्व वर्तमान रहता है। रूपत्व, रसत्व आदि रूप गुणत्व उसके व्याप्यधर्मके कारण हैं। रूप गुण सभी इन तीन लक्षणोंके अनुसार होते हैं। अग्निवेशका कथन है कि

समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः
स नित्यो यत्र हि द्रव्यं न तत्रानियतो गुणः

अर्थात वह समवाय सम्बन्धसे द्रव्याश्रित हो कर रहता है। वह नित्य है किन्तु भूम्यादिकी कियाओंमें वाधक नहीं है। कार्योत्पत्तिमें चेष्टा रहित है, स्वयं अनियत गुण है। निश्चेष्ट है। भाषापरिच्छेदमें गुणका वर्णन करते हुए कहा गया है कि

"अथ द्रव्याश्रिताज्ञेया निर्गुणाः निष्क्रियाः गुणाः"

इस लक्षणके अनुसार गुणकी सीधी परिभाषा यह होती है कि गुण उसे कहते हैं जो द्रव्याश्रित हो और स्वयं निर्गुण और निष्क्रिय हो। सप्तपदार्थीमें शिवादित्य गुणके परिचय बतलाते हुए लिखते हैं

"गुणस्तु गुणत्व जातियोगी जातिमत्वेसति अचलनात्मकत्वे—
सति समवायिकारणत्व रहितश्चेति।"

शिवादित्य अभाव सहित सात पदार्थ मानते हैं। उनका कहना है कि गुण जातिविशिष्ट है, अचलनात्मक है और समवायिकारणत्व विरहित है। जातिविशिष्टमें द्रव्य, गुण और कर्मकी गणना होती है। जातिविशिष्ट होनेके कारण

सामान्य-विशेष-समवाय और अभावसे इसका सम्बन्ध टूट गया। अचलनात्मक कहनेसे कर्मसे सम्बन्ध छूटा; क्योंकि कर्ममें गति है इसमें गति नहीं। अब द्रव्य और गुण बचे। द्रव्य में समवायिकारण होता है द्रव्य समवायि कारण बन सकता है; किन्तु गुणमें समवायि कारण नहीं होता अर्थात गुण किसी पदार्थका समवायि कारण नहीं बन सकता। इस प्रकार केवल गुण ऐसा बचा जो जातिविशिष्ट होने पर भी द्रव्याश्रित है और निर्गुण एवं निष्क्रिय है। जिसके शरीरमें गुण होते हैं या जिस शरीरके द्वारा गुणोंका अनुभव किया जाता है उसे **गुणी** कहते हैं-चरकके शारीर स्थानमें लिखा है—

गुणाः शरीरे गुणिनां निर्दिष्टाश्चिन्ह मेवच

गुणके साथ गुणीका आवश्यक सम्बन्ध है। असली गुणी पंचमहाभूत हैं। क्योंकि ये गुण इन्हीं महाभूतोंके हैं। मनुष्य शरीर पञ्चमहाभूतोंसे बना है अतएव उन गुणोंका अनुभव यह शरीर करता है। चरक संहिताके सूत्र स्थानस्थ आत्रेय भद्रकाप्यीय अध्यायमें शरीरस्थ महाभूतोंके गुण बतलाये गये हैं। वहाँ बतलाया गया है कि ये गुण शरीरमें उन पंचमहाभूतोंके अस्तित्वका द्योतन करते हैं। ये गुण दो प्रकारके हैं। शब्द स्पर्शादि और २ गुरु-लघु-खर आदि। शब्द स्पर्शादि गुण भी दो प्रकारके हैं १ कारण गुण २ कर्म गुण। कारण स्थितिमें उनसे इन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है और कर्म स्थितिमें इन्द्रियाँ उनका ग्रहण करती हैं। यह प्रसिद्ध ही है कि सभी द्रव्य पांचभौतिक हैं और उन्हें ग्रहण करने वाली इन्द्रियां भी पांचभौतिक ही हैं। पंचमहाभूतोंकी कर्तृदशा और कर्मदशा सिद्ध है। मन और बुद्धि इन्द्रियोंकी सहायता करते हैं।

पाश्चात्य विचार

गुणके सम्बन्धमें पाश्चात्य पण्डितोंने भी विचार किया है; किन्तु उनकी विचारधारा भिन्न और निकृष्ट है। ब्रिटिश विद्वान लॉक लिखता है :—

यह अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि जिनके प्रत्यय या बोध चित्तमें होते हैं उनके सदृश गुण बाह्य वस्तुओंमें हैं, ऐसा समझना चाहिये। मनमें रूप आदिका जो बोध होता है उस बोध को प्रत्यय कहते हैं। और वस्तुमें उन प्रत्ययोंके प्रयोजक जो धर्म हैं उन्हें **गुण** कहते हैं। अर्थात प्रत्यय चित्तगत हैं और गुण बाह्य वस्तुगत हैं। गति, आकार, विस्तार आदि द्रव्यके वास्तव या **मुख्य गुण** (प्रायमरी क्वालिटीज़) हैं। अन्तः—करण में इनका जैसा भान होता है वस्तु में भी वैसे ही ये हैं पर वर्ण-रस आदि केवल इन्द्रियोंके सम्बन्धसे विदित होते हैं। इस कारण इनको **गौण गुण** (सेकण्डरी क्वालिटी) कहा जाता है। मुख्यगुणोंका प्रायः एकसे अधिक इन्द्रियों द्वारा बोध होता है। * और गौण गुणोंका बोध केवल एक ही इन्द्रिय द्वारा होता है। ये

---

*यह गुणके दो भेद करता है मुख्य और गौण। मुख्य गुणोंका बोध एकसे अधिक इन्द्रियोंके द्वारा होता है और गौणका एक इन्द्रिय द्वारा। नैयायिकोंने भी गुणके दो विभाग एक इन्द्रिय ग्राह्य और द्विइन्द्रिय ग्राह्य किया है। रूप-रस-गन्धको नैयायिक एकेन्द्रिय ग्राह्य कहते हैं; क्योंकि रूपका ग्रहण नेत्र, रसका जिह्वा और गन्धका घ्राणको ही होता है। संख्या - परिमाण पृथकत्व आदिको द्विइन्द्रिय ग्राह्य कहा गया है; क्योंकि इनके बोधका सम्बन्ध त्वचा और चक्षु दोनोंसे रहता है।

वास्तव गुण वाह्य इन्द्रियके नहीं हैं। जैसे सुई गड़ाने से जीवको दुःख होता है पर वस्तुतः सुईमें दुःख नहीं है। केवल दुःख प्रयोजक कुछ तीक्ष्णता, कठिनता आदि गुण हैं। इसी प्रकार रस आदि बोध प्रयोजक गुण रसादिसे भिन्न कुछ दूसरे प्रकार की उन उन वस्तुओंमें भी वर्तमान हैं; जो वस्तु पूर्ण हरी या लाल देख पड़ती है,वही सूक्ष्म दर्शन के द्वारा जब उसके दाने अलग हो जाते हैं तब सफेद मालूम होने लगती है। इसी से वर्ण आदि गुण इन्द्रियाधीन हैं **नकि वस्तुके अधीन;** क्योंकि वर्ण-रस आदि गुण यदि वस्तुके अधीन होते तो सदा एकसे अनुभवमें आते। संख्या- परिमाण आदि मुख्य गुण वास्तविक हैं। ये जैसे वस्तुमें हैं वैसे ही दिखाई पड़ते हैं। रूप-रस- गन्ध आदि गुणों का आधार मुख्य गुणोंमें है। किन्तु वे वास्तवमें जैसे हमको दिखाई पड़ते हैं वैसे नहीं हैं। उनका दिखाई पड़ना हमारे मनके आश्रित है। यदि स्वादका चखने वाला न हो तो रस और गन्ध वस्तुका ज्ञान ही न होगा। लॉक के भेदोंको आगे चल कर वस्तुवादियोंने नहीं माना। हिन्दू दर्शन भी मानते हैं कि गौण गुणोंसे समानता रखने वाले विशेष गुणोंका अस्तित्व मन पर निर्भर नहीं है। इन्द्रियोंका महाभूतोंसे सम्बन्ध होने के कारण द्रव्यमें ही रूप-रस गन्धादि माने जाते हैं। ये यथार्थमें द्रव्य के आश्रित ही गुण हैं।

लॉकका कहना है कि देहात्मवाद सम्बन्धी भौतिक द्रव्य का ज्ञान स्पष्ट तौरसे किसी को नहीं होता। इस पर बर्कले (विक्रम संवत १७४१) का कहना है कि यदि वह जाना जा सकता है तो गुणोंके ही द्वारा जाना जा सकता है। हम गुणोंसे बाहर नहीं जा सकते। जब द्रव्य में गुण नहीं रहते तब वह क्या रह जाता है। यदि खड़िया मिट्टीसे सफेदी, आकार - विस्तार - भारीपन चिकनाहट आदि सब गुण किसी प्रकारसे निकाल

लिये जायँ तो क्या रह जायगा ? यदि कुछ रह जाय तो उसके भी कुछ गुण होंगे। यदि गुण नहीं तो द्रव्य ज्ञानमें ही नहीं आ सकता। यह बात असम्भव है कि कोई वस्तु हो और ज्ञानमें न आ सके। ज्ञानमें आना ही द्रव्य की सत्ता है। सत्ता सृष्टि है, द्रव्यके गुण यदि हमको कहीं अलग अलग मिलते हैं तो हमको यह आवश्यकता प्रतीत हो सकती है कि इनका योग करनेवाली इनसे भिन्न कोई वस्तु होनी चाहिये। लेकिन हमको कोई गुण अलग नहीं मिलता। न रंग विना विस्तार के दिखाई पड़ता है और न विस्तार विना रङ्ग और गुरुत्वके।

ब्रिटिश विद्वान रीड (विक्रम संवत १७६६) का कहना है कि वस्तु में मुख्य गुणोंके अतिरिक्त गौण गुण भी रहते हैं। रूप - रस - गन्ध आदि के संवेदन यह अनुमान कराते हैं कि इनके अनुकूल द्रव्यमें कोई गुण हैं। जो संवेदनोंका कारण है। वे गुण और संवेदन एक नहीं हैं। गुण संवेदनके कारण हैं। संवेदन एक प्रकारसे इनके प्रतिनिधि हैं। मुख्य गुणोंमें इतना अन्तर है कि इनके संवेदन इनसे अधिक समानता रखते हैं। रूप-रस - गन्ध आदि के जो कारण रूप गुण हैं वे बिलकुल अज्ञात हैं। उनकी सत्ता मात्र कही जाती है। लम्बाई-चौड़ाई आदि में जो कारण हैं वे इतने अनिश्चित नहीं हैं उनके संवेदनों और उन गुणोंमें थोड़ी सामानता है। किन्तु वे भी एक नहीं हैं। संवेदन और गुण एक नहीं हो सकते।

प्रसिद्ध विद्वान ब्रेडेल (सन् १८४६ ईस्वी) का कहना है कि आयाम, विस्तार, अनेकता, गति, परिवर्तन, देशकालादि, द्रव्य-गुण आदि दृश्य पदार्थों की अपूर्णता और व्याघातकता जानने योग्य है। मुख्य और गौण गुण व्यर्थ हैं। जिस आधार पर गौण गुण गौण सिद्ध किये जाते हैं उसी आधार पर मुख्य गुण

भी गौण सिद्ध किये जा सकते हैं। मुख्य गुणोंमें लोगों ने वितार गुणकी प्रधानता मानी है किन्तु विस्तार रङ्गसे अलग नहीं है और जब रङ्गसे अलग नहीं है; किन्तु रङ्ग गौण है तब विस्तारको उसी के साथ गौणता प्राप्त हो जायगी। इसी प्रकार गुणी और गुणका भेद भी भ्रमात्मक है। यदि वस्तु एक है तो उसके गुणोंकी अनेकता कैसी ? वे गुण एक दूसरेके सम्बन्धसे द्रव्यमें ही हैं; और यदि गुण अनेक माने जायँ तो गुण रहित द्रव्य मानना पड़ेगा। परिवर्तनका विचार भी व्याघातक है। जो द्रव्य है उससे दूसरे प्रकार कैसे होगा ? बोसेकेट साहब वस्तुवादियोंकी तरह गौण गुणोंको वस्तुमें ही मानते हैं। और विकासवादियोंकी तरह जीवका उदय भौतिक परिस्थितियोंसे मानते हैं।

कर्म पदार्थ

(Action)

परिभाषा—सामान्य पदार्थों में कर्म तीसरा पदार्थ है। चरक संहितामें कर्मका लक्षण लिखा है।

प्रयत्नादि कर्मचेष्टितमुच्यते

अर्थात प्रयत्न-प्रवृत्ति - निवृत्ति- जीवनयोनि आदि जिसके कारण हैं ऐसे शारीरिक व्यापारोंका नाम कर्म है। इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक चेष्टा द्वारा आत्म संयोग प्रयत्नोंसे हाथों द्वारा किया हुआ काम कर्म कहलाता है। वैशेषिक सूत्रमें कर्म की परिभाषा यों दी हुई है—

एक द्रव्य मगुणं संयोग विभागेष्वनपेक्ष कारणमिति

कर्म लक्षणम्॥ वै : सू, १। १। १७

अर्थात जो एक ही द्रव्यका आश्रित रहे, स्वयं गुणसे रहित हो और संयोग-विभागका निरपेक्ष कारण हो। जैसे गुण द्रव्यके आश्रित रहता है, उसी तरह कर्म भी द्रव्याश्रित है। रस-वीर्य-प्रभाव-विपाक आदि जैसे द्रव्याश्रित रह कर अपना प्रभाव दिखाते हैं, उसी तरह कर्म द्रव्यके द्वारा कार्य करता है। अग्नि और इन्धनके संयोगकी तरह अन्योन्याश्रय भावसे नहीं एक निष्ठ भावसे कर्म द्रव्यमें ही रहता है। एक ही द्रव्यमें रहता है। ऊपर "एक द्रव्यमृके" बाद "अगुणम्" शब्द है। जैसे गुणमें और गुण नहीं अर्थात गुण निर्गुण है, उसी तरह कर्म भी किसी गुणका आधार नहीं होता। गुणवान और कर्मवान द्रव्यमें गुण और कर्म रहते हैं। तीसरापद "संयोग विभागेष्व-नपेक्ष कारणम्" है। गुण और कर्ममें एक अन्तर है, गुण उस द्रव्यके संयोग या विभागका कारण नहीं होता, परन्तु कर्म संयोग और विभागका कारण होता है। क्योंकि संयोग, विभाग और वेग तीनों गुण कर्मके द्वारा ही प्रकट होते हैं। जैसे फुटबालकी गेंदका हाथसे संयोग होता है और जब फेंकते हैं तब उसमें वेग होता है, वह आगे जाती है। इस तरह हाथसे जो उसका संयोग हुआ था वह इस वेगके साथ विभाग भी हो गया और वेग रूपी कर्म उस गेंदमें आ गया। सप्तपदीमें कहा गया है कि कर्म प्राथमिक संयोग-विभागका प्रवर्तक कारण होता है और अनुवर्ती संयोग या विभाग संयोगज अथवा विभागज भी होता है। किन्तु मूलसंयोग और विभाग कर्मके द्वारा ही होता है।

लक्षण—एक १द्रव्यत्व, २अगुणत्व और ३संयोग-विभाग-निरपेक्षकारणत्वके सिवाय कर्ममें ४मूर्तद्रव्य वृत्तित्व ५क्षणिकत्व ६ गुरुत्व-द्रवत्व ७ प्रयत्न-संयोगजत्व, ८ स्वकार्य संयोग विरो-

थित्व ९ स्वपराश्रय समवेत कार्यारम्भकत्व १० द्रव्यानारम्भकत्व ११ समान जातीयानारम्भकत्व और १२ प्रतिनियत जाति योगित्य लक्षण भी पाये जाते हैं। **मूर्त द्रव्यवृत्तित्वका** यह मतलब है कि कर्म केवल मूर्त या साकार द्रव्यमें ही रहता है, निराकारमें नहीं क्योंकि आकाश जैसे निराकार द्रव्य निष्क्रिय होते हैं। **क्षणिकत्व** का यह मतलब है कि कर्म नित्य अर्थात स्थायी नहीं होता। क्षणिक रहता है। जैसे गेंद हाथमें लेकर फेंकी जाय तो पहले क्षण हाथसे संयोग होकर उसमें गति रूपी क्रिया उत्पन्न हुई, दूसरे क्षण ज्यों ही वह हाथसे छूटी त्यों ही उसका हाथसे विभाग हुआ। इस प्रकार तीसरे क्षण विभागके कारण पूर्ववर्ती संयोगका नाश हुआ। चौथे क्षणमें यदि आगे कोई उसे लोक ले तो लोकने वालेके हाथोंसे नया संयोग हुआ। यदि किसीने न लोका तो भूमिपर गिरकर उसका भूमिसे संयोग हुआ। अन्तमें पांचवें क्षण क्रियाका नाश हुआ। अर्थात हाथमें गेंद लोकी गयी तो उसकी गमन-क्रिया नष्ट हुई और जमीन पर गिर पड़ी तौ भी लुढ़ककर स्थिर होनेसे क्रियाका नाश हुआ। अतएव कर्म की क्रियाएँ उत्पन्न होकर विलीन होने वाली अर्थात क्षणिक हैं। **गुरुत्व-द्रवत्व-प्रयत्न संयोगजकत्वका** यह मतलब है कि गुरुत्वके कारण द्रव्य नीचे गिर जाता है। पेड़ से फल पककर भारी होनेके कारण नीचे गिरता है। द्रवत्व लक्षणसे कर्म होता है। अर्थात द्रव पदार्थोंका यह लक्षण है कि नीचे की ओर या ढालू जगह की ओर बहते हैं। प्रयत्नका मतलब यह है कि आत्मा की प्रेरणासे हाथ के द्वारा कर्म उत्पन्न होता है। संयोगका मतलब हुआ कि वायुके संयोगसे जैसे तृण हिलता है। अग्निकी शिखाका ऊपर उठना, सृष्टिके आरम्भमें अणुओंमें कर्म स्पन्दन क्रिया,

श्वासोच्छ्वास, रक्त सञ्चालन आदि कर्म अज्ञात कारणसे अदृष्ट शक्तिसे प्रेरित होकर होते हैं। इनकी गणना ऊपरके लक्षणोंसे भिन्न है। स्वकार्य संयोग विरोधित्वका यह अर्थ है कि कर्मके द्वारा पूर्वसंयोगका नाश होकर पर संयोगकी उत्पत्ति होती है। वीज अंकुरको पैदा कर स्वयं नष्ट हो जाता है, उसी तरह किसी वस्तुको कहीं रख देनेसे पूर्व सम्वन्ध नष्ट होता और पर सम्वन्ध जहाँ रखा है उससे स्थापित हो जाता, साथ ही कर्मका भी नाश हो जाता है। इसे कणाद कार्यविरोधी कर्म कहते हैं। असमवायि कारणत्वका यह मतलब है कि संयोग-विभागका कारण कर्म ही होता है। इसलिये कर्म में कारणत्व रहता है। किन्तु यह कर्म उपादान कारण तो हो नहीं सकता; क्योंकि उपादानकारण समवायि कारण होता है और समवायि कारण कर्म में नहीं, द्रव्यमें होता है। जैसे दवा कूटते समय खरलमें लोढ़े की चोट दी जाती है। यहाँ खरल और लोढ़ा उपादान कारण हैं; किन्तु दवा कुटनेका काम असलमें कर्म होनेसे होता है और खरल एवं लोढ़ेका संयोग होता है। इसलिये यह कर्म इस संयोगका असमवायि कारण है। स्वपराश्रय समवेत कार्यारम्भकत्वका यह मतलब है कि कर्मसे उत्पन्न कार्यका आरम्भ स्वाश्रित भी रहता है और पराश्रित भी रहता है। जैसे खरलमें लोढ़े की चोट करने पर कर्मका आरम्भ लोढ़ेमें हुआ किन्तु संयोग लोढ़े और खरल दोनों में होकर कर्मका फल दोनोंको मिलता है। समान जातीयानारम्भकत्व से यह अर्थ निकला कि "द्रव्याणि द्रव्यान्तरमारभन्ते गुणाश्च-गुणान्तरम्" १।१। १० के अनुसार द्रव्य और गुण सजातीयारम्भक होते हैं। अर्थात एक द्रव्य दूसरे द्रव्यको और एक गुण दूसरे गुणको उत्पन्न कर सकता है; किन्तु एक कर्म दूसरे कर्मको उत्पन्न नहीं कर सकता। अर्थात कर्म में समान जातीय कर्म उत्पन्न करने की शक्ति नहीं है। इच्छा या प्रयत्नसे गतिका या कर्मका विराम

होता है। और आगे यदि कर्मका आरम्भ हो तो उसका श्रेय कर्म को नहीं किन्तु उस इच्छा या प्रयत्न को जिसकी प्रेरणा से फिर कार्यका आरम्भ हुआ। अतएव कर्म "कर्मसाध्यंन विद्यते" इस वैशेषिक सूत्रकी पुष्टि होती है। द्रव्यानारम्भकत्व का यह मतलब है कि कर्मसे द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। क्योंकि कार्य-द्रव्यकी उत्पत्ति अवयवोंके संयोगसे होती है; किन्तु अवयवोंका संयोग होते ही कर्मका विनाश हो जाता है। अर्थात कार्य द्रव्यके समय कर्मका अभाव रहता है। ऐसी दशा में उसे द्रव्यारम्भक नहीं माना जा सकता। इसलिये "न द्रव्याणांकर्म" इसमें लागू होता है। प्रतिनियत जातियोगित्वका यह मतलब है कि उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदि जितने कर्म हैं उनमें दिशाभेदको लेकर क्रियाभेद निरूपित किया जाता है "दिग्विशिष्ट कार्यारम्भकत्वं च विशेषः" (पदार्थ संग्रह) किन्तु सभी क्रियाओंमें "कर्मत्व" जाति समवेत रहती है। अर्थात द्रव्य और गुणकी तरह कर्मका भी जातिघटित लक्षण दिया जा सकता है।

कर्मके भेद—कर्मके पाँच भेद हैं १ उत्क्षेपण २ अवक्षेपण ३ आकुंचन ४ प्रसारण और ५ गमन।

उत्क्षेपणापक्षेपणाकुंचन प्रसारण गमनानि।
पञ्चैव कर्माणि (प्रशस्तपाद)

उत्क्षेपण—उत्क्षेपणका अर्थ "ऊर्ध्वदेश संयोगहेतुः उत्क्षेपणम्" ऊपरकी ओर संयोग करना अर्थात ऊपर उठना। इस क्रियाके द्वारा ऊपरके भागसे संयोग और नीचे के भागसे विभाग होता है। पक्षी ऊपर उड़ता है। हवाई जहाज उड़ता है। गेंद ऊपरको उछलती है।

अवक्षेपण—अवक्षेपण या अपक्षेपण उस कर्म का नाम है जिसके द्वारा निम्नभाग से संयोग और ऊपरी भागसे विभाग होता है। "अधोदेश संयोग हेतुः अवक्षेपणम्" नीचे गिरने को अवक्षेपण कहते हैं। पेड़से फल नीचे गिरता है। इसके अन्तर्गत शास्त्रविहित यज्ञयागादि कर्मों के विरुद्ध धर्मानुकूल प्रयत्नोंसे संयोग त्याग और अधोगतिको पहुँचाने वाले कर्मों से संयोग को भी ले सकते हैं। निषिद्ध देश गमन, हिंसा, मांसभक्षण आदि अधर्मानुकूल प्रयत्न भी इसीमें आ जाते हैं; क्योंकि ऊर्ध्व गामी आत्म संयोग से विभाग और अधोगामी प्रयत्नों से संयोग होता है।

आकुञ्चन—आकुञ्चन का सीधा अर्थ सिकुड़ना है। "शरीरस्य सन्निकृष्ट संयोगहेतुः आकुंचनम्।" जिसमें शरीर संकुचित हो जाय, झुक जाय और दूसरं सन्निकृष्ट अवयवके साथ संयोग हो जाय उसे आकुंचन कहते हैं। इसमें आन्तरिक प्रदेशसे संयोग और वाह्य प्रदेश से विभाग होता है। जैसे अन्तरायाम रोग में। लजालू सिकुड़ती है, कछुआ शरीर सिकोड़ता है।

प्रसारण—प्रसारणका अर्थ है फैलाना। यह आकुंचन के ठीक विरुद्ध है। "विप्रकृष्ट संयोगहेतुः प्रसारणम्" इसमें दूरके प्रान्त से संयोग होता है। जैसे कपड़े फैलाना, लताका फैलना, नदीमें पूर आकर अपने गर्भ प्रान्तसे वाहर फैलना; कमलका खिलना इसके उदाहरण हैं।

गमन—गमन का अर्थ गति करना, चलना है "यदानियत दिक्प्रदेश संयोग विभाग कारणं तद्गमनमिति।" (पदार्थ संग्रह) जिसके द्वारा एक स्थान से विभाग और दूसरे स्थान से संयोग होता है

उसे गमन कहते हैं। गमन में किसी दिशाका निर्धारण कर्ता की इच्छा पर निर्भर रहता है। इस गमन के अन्तर्गत "भ्रमणं रेचनं स्पन्दनोर्ध्वज्वलन मेव च। तिर्यक्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते" अर्थात घूमना, टहलना, रेचन क्रिया, स्पन्दन, आगकी लवका ऊपर उठना, टेढ़े मेढ़े चलना आदि सब कर्म गमन के अन्तर्गत आ जाते हैं। यदि कोई शंका करे कि ऊपर जाना, नीचे जाना, सिकोड़ना, फैलाना भी तो गमन सूचक कर्म हैं; फिर इनका अलग निर्देश न करके गमन के ही अन्तर्गत सबको क्यों नहीं ले लिया गया है ? इसका उत्तर यह है कि उत्क्षेपणादि गति विशेष नहीं; बल्कि गतिके अनुकूल व्यापार विशेष हैं। ऊपर फेंकने का अर्थ है कि ऊपरको ही गति होगी, अवक्षेपण में नीचे ही गति होगी, संकोच में लचना पड़ेगा और प्रसारण में फैलाना होगा। इनकी गतिका आश्रय निश्चित है। उसीके अनुकूल हस्त चालनादि चेतना द्वारा होगा। इसमें संयोग विशेष के अनुकूल व्यापार के अनुकूल व्यापार होगा। निष्क्रमण, प्रवेशन आदिका भी यही हाल है। इनकी दिशा निश्चित नहीं है अतएव इनका अलग उल्लेख नहीं हुआ।

भिन्न भिन्न अर्थों में कर्म का प्रयोग—कर्म शब्दका प्रयोग हम जो शुभाशुभ कर्म करते हैं उसके लिये भी होता है। चरक में इसका जिक्र है। जैसे नास्तिक लोग मानते हैं कि कर्मों का कर्ता और भोक्ता पुरुष नहीं वल्कि शरीर है। आस्तिक लोग पुरुष जीवको कर्मों का फल भोगने वाला कहते हैं। यथार्थ में कर्ता कर्मसे युक्त होकर सम्पूर्ण कर्म करता है। कर्ता इन्द्रिय आदि अनेक उपकरणों से युक्त होकर दर्शन आदि नाना कर्म करता है। इसलिये देहसे भिन्न आत्मा सब कर्मों का कारण है। आँख झपकने के निमेष काल से भी शीघ्र भाव वदल रहे हैं; नाश हो

रहे हैं। नाश हुए पदार्थोंका पुनः सद्भाव नहीं होता और एक के किये कर्मका फल दूसरा नहीं भोगता। जिसने कर्म किया है वही फल भोगता है। इसलिये प्राणियोंके किये कर्मका फल भोगने वाला देहसे अतिरिक्त नित्य पुरुष नामक चेतन आत्मा है। आत्माके देहसे पृथक होने पर ही अहंकार भाव फलको उद्देश्य रखकर कर्म करता, किये कर्मका फल भोगता, एक शरीरसे दूसरे शरीरमें जाता, और स्मरण करता है। मन बुद्धि-ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियाँ करण हैं। करने वाले आत्मा के संयोगसे कर्म होता है। करने वालेके संयोगसे ही बुद्धि और संवेदना उत्पन्न होती है। अकेला भूतात्मा विना कारणोंके कर्म में प्रवृत्त नहीं हो सकता और न फल भोग कर सकता है। किन्तु शरीर, सत्व, इन्द्रिय इनके संयोगसे ही सब कुछ होता है। संयोगके विना कर्म नहीं होता सुख-दुःखका ज्ञान आत्मा, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धिके द्वारा घटित होता है; परन्तु वह कर्म के विना उत्पन्न नहीं होता। तत्व ज्ञानका योग उपस्थित होनेपर कृत कर्मों का फल भोग क्षय होता है।

इसके सिवाय वेगान्धारणीय अध्याय में कायिक, वाचिक, मानसिक और आत्माके प्रतिकूल कर्मों को गिनाकर कहा गया है कि इहलोक और परलोक की हितकामना करने वाले मनुष्योंको इन्हें रोकना चाहिये। चरकमें तिस्रैषणीय अध्यायमें पूर्वजन्मके कृत कर्मोंको इस जन्मका कारण माना गया है। क्योंकि पदार्थोंका संयोग और वियोग स्वभावसे नहीं होता; वल्कि कर्म कारण की अपेक्षा करता है। फिर आगे कहा गया है कि मन और शरीरकी चेष्टाका नाम कर्म है। कर्मके अतियोग, मिथ्यायोग और हीनयोगसे दोषोंके प्रकुपित होने और रोग होनेका जिक्र किया गया है। इसके वाद "रस" प्रकरणमें

कहा गया है कि द्रव्य द्रव्यके प्रभावसे, गुणके प्रभावसे, द्रव्य एवं गुण दोनोंके प्रभावसे उस उस समयमें, उस अधिष्ठानका आश्रय लेकर और उस उस योजना तथा प्रयोजनको लक्ष्यमें रख जो क्रिया करते हैं उसका नाम **कर्म** है। द्रव्य प्रभावसे जमालगोटा विरेचक है, गुण प्रभावसे मणिधारणसे विष दूर होता है, कृष्णाजिनमें अजिन द्रव्यरूपसे और कृष्ण गुण रूपसे अर्थात द्रव्य और गुण दोनों रूपसे काम करता है, शिरोविरेचन द्रव्य शिरोविरेचन करते हैं यह सब कर्म है। जिसके द्वारा करते हैं वह वीर्य है, जहां कर्म करते हैं वह अधिकरण है, जिस समय करते हैं वह काल है, जिस प्रकार करते हैं वह उपाय है। इस प्रकारसे जो सिद्ध करते हैं वह कर्म फल है। विमान स्थानमें कहा गया है कि अपने शरीरसे जो **कर्म** पूर्व जन्ममें किये गये हैं वह दैव कहलाता है। इस जन्ममें जो कर्म किया जाता है उसे पुरुषकार कहते हैं। इस जन्मका किया हुआ दृष्टकर्म हीन, मध्यम और उत्तम तीन प्रकारका है। आगे कहा है कि जहाँ पर एक कर्म बलवान हो दूसरा निर्बल हो वहाँ बलवान कर्म निर्बलको दबा लेता है। इसलिये यदि पुरुषकार कर्म बलवान होगा तो निर्बल दैवको दबा लेगा। और यदि दैव बलवान होगा तो वह पुरुषकार कर्मको नष्टकर देगा। किसी बलवान कर्मका तो किसी विशेष निश्चित समयमें ही परिपाक होता है और किसी कर्मका विपाककाल अनिश्चित है। किस कर्मका पाक कब होगा इसका निर्णय कारणोंसे किया जाता है। कभी सहकारी अन्य कारणको पाकर कर्मका पाक होता है। कृत कर्म अवश्य भोगना पड़ता है। इस प्रकार कर्मके परिपाक कालके नियत और अनियत होनेसे आयु भी नियत तथा अनियत है।

आयुर्वेदका पञ्च कर्म विधान भी कर्मका एक नमूना है। वमन द्वारा ऊर्ध्वगामी कर्म होता है, विरेचन द्वारा अधोगामी कर्म सम्पादित होता है, स्नेहन स्निग्ध कर्म सम्पादन करता है, स्वेदन प्रस्वेद निकालनेका कर्म करता है, वस्ति शोधन और शमन दोनों कर्मोंकी पूर्ति करता है। इस प्रकार कर्मवाद वहुत विस्तृत और बोधप्रद है।

सामान्य

(Generality)

विवरण----सामान्य चौथा पदार्थ है। द्रव्योंकी घटनामें जिन अंशोंकी आवश्यकता पड़ती है, उन्हें पदार्थ नामसे सम्बो-धन किया गया है। इसे एक प्रकारके द्रव्यगत धर्म ही समझना चाहिये। कोई-कोई धर्म ऐसे होते हैं जिनसे पदार्थके अनुगत रूपोंकी प्रतीति होती है। जैसे द्रव्य कहनेसे उस वस्तु संज्ञक सम्पूर्ण द्रव्यत्वका जिसमें समावेश होता है वह समझा जाता है। गुण कहनेसे द्रव्यत्वका गुणत्व समष्टीकरण समझा जायगा। अभाव यद्यपि कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं तथापि किसी धर्मका उस द्रव्यमें न होना सिद्ध होता ही है। इसी प्रकार किसी पदार्थ के भेद कहनेसे उस भेदत्वके अन्तर्गत जितने भाव हैं उनकी उपस्थिति समझी जायगी। ये धर्म द्रव्यके अनुगत उसके परिचयकी प्रतीतिके हेतुरूप अपने कुछ नाम, उपाधि, जाति द्वारा कहे जाते हैं। द्रव्योंमें जो जातित्व बोधक धर्म है वह उस द्रव्यके आश्रयमें समवाय सम्बन्ध (अविच्छिन्न सम्बन्ध) के साथ विद्यमान रहता है। द्रव्यकी उपाधि अपने आश्रयमें रख साधारणत: द्रव्यका स्वरूप सम्बन्ध उसके साथ रहता है। ऊपर धर्म शब्दका प्रयोग हुआ है, धर्मकी परिभाषा जगदीश सूक्तिमें

"नानाधर्मिण्येक प्रकारक प्रमा प्रकारीभूतो धर्मः" बतलायी गयी है। जो अनेक धर्मोंमें एक ही प्रकारका ज्ञान उत्पन्न करावे उसे धर्म कहते हैं। एक व्यक्ति वृत्ति गणनत्व प्रभृति भी धर्म की उपाधिसे विभूषित किये जा सकते हैं; किन्तु जाति नामक धर्म एकमात्रव्यक्ति कहीं धर्म नहीं है वह तो उस द्रव्यमें और उस प्रकारके सम्पूर्ण द्रव्योंमें सामान्य रूपसे उपस्थित रहता है। द्रव्योंमें जो धर्म एक जाति सूचक सामान्य रूपसे रहता है, उसीको यहाँ सामान्य नामसे व्यवहार किया गया है। किरणावलीमें सामान्यकी परिभाषा यों दी हुई है—

सामानानां भावः स्वाभाविकोऽनागन्तुको बहूनां धर्मः
सामान्य मिति

इससे स्पष्ट है कि ऐसा धर्म आगन्तुक रूपसे बीचमें नहीं आता बल्कि सामान्यतः उस जातिके संघटनमें आरम्भसे रहता है और एक नहीं उस प्रकारके सभी द्रव्योंमें रहता है, जिससे उस द्रव्यकी एक विशिष्ट जाति की सूचना होती है। सामान्यकी उपस्थिति सामान्य भावसे उस प्रकारके सभी द्रव्योंमें रहनी चाहिये। तर्क संग्रहमें लिखा है।

नित्यमेक मनेकनुगतं सामान्यम्।

परिभाषा—एकमें जिस प्रकारका जाति सूचक धर्म है, वैसा ही उस जातिके अनेक व्यक्तियोंमें भी पाया जाय, वह भी नित्य रूप स्थायी रूपसे पाया जाय अर्थात आगन्तुक न हो वही सामान्य है। शंकर मिश्र कहते हैं—

"नित्यमनेक व्यक्तिवृत्ति सामान्यं नित्यत्वेराति स्वाश्रयान्योन्याभाव समानाधिकरणं वा।"

इसमें और भी स्पष्ट किया गया है। अर्थात यह जाति सूचक धर्म नित्य उसमें सदा वर्तमान रहे, यही नहीं उसी प्रकारके उसी जातिके व्यक्तियोंमें भी वृत्ति रूपसे वह सामान्य नित्यत्व रहे। यही नहीं यह धर्म उसके आश्रय में अन्योन्य भाव समानाधिकरण रूप हो कर रहे। संयोग-विभाग रूपसे वह आश्रयी न हो। अतएव जाति या सामान्यकी परिभाषा हुई कि जो धर्म स्वयं नित्य अर्थात ध्वंसप्रागतावशून्य भावसे और उसी प्रकार की समस्त व्यक्तियोंमें समवाय सम्बन्धके साथ वर्तमान रहे उसे जाति या सामान्य कहते हैं। ध्वंसप्रागताव-शून्यका भाव यह हुआ कि वह धर्म उस द्रव्य या व्यक्तिमें तब तक वर्तमान रहेगा जब तक जीवन ही नहीं अथवा कार्योप-योगिता रूपमें ही नहीं पार्थिव रूपसे भी जब तक उसकी सत्ता है तब तक रहेगा। ध्वंसके पश्चात जलभुन कर या सड़गल या टूट फूट कर जब तक वह नष्ट न हो जाय तब तक वह जाति सूचक सामान्य धर्म उसमें मौजूद रहेगा।

द्रव्यमें संयोग और विभाग द्वारा भी एक रूपत्व आता है, एक धर्मकी उपस्थिति होती है; परन्तु वह नित्य नहीं, क्षणिक या किंचित काल व्यापी होता है। घट-पट आदि कर्म-द्रव्य भी अनेक समवेत हैं किन्तु एक ही रूप और कार्य दो वस्तुओंमें नहीं रह सकते। अतएव उनका सम्बन्ध नित्य नहीं इसलिये सामान्यमें नहीं आते। क्योंकि उनका सम्बन्ध एक द्रव्याश्रित है, द्रव्यमें आकाशादिका सम्बन्ध नित्य और समवेत होने पर भी अनेकमें जाति मात्रमें समवेत नहीं। अत्यन्ता-भाव आदि नित्य और अनेक वृत्ति होने पर भी समवाय-सम्बन्ध वृत्ति नहीं है। इसीलिये संयोग-विभाग तथा आकाशादि धर्मको जातिके लक्षणमें-सामान्यके लक्षणमें

अतिव्याप्ति रूपसे सम्मिलित नहीं किया जा सकता। क्योंकि आकाशकी वृत्ति एक मात्र आकाशमें ही सीमित है। वह अनेक समवेत नहीं है। ऐसी जातिकी सिद्धि अनुगत प्रतीति-मूलक होनी चाहिये। यदि उससे उसी प्रकारके अन्य बहुतसे द्रव्योंमें ऐसे ही सामान्य धर्म की कल्पना न हो सके तो ऊपर की सी अनुगतकी प्रतीति असम्भव हो जायगी। व्यक्ति विशेष में,द्रव्य विशेषमें जो धर्म ऐसा हो जिससे उनमें परस्पर भेद सूचित होता हो, उसी जातिके अनेक द्रव्योंमें उस धर्म की सामान्यता न हो तो उससे अनुगत भावकी सिद्धि नहीं होगी। अतएव वह धर्म सामान्य बोधक नहीं होगा। मनुष्यमें जो "मनुष्यत्व" है, गायमें जो "गोत्व" है वही सामान्य है और जाति सूचक है। स्वभाव, रहन-सहन, खान-पान, आँख-कान-नाक-पैर सींग-पूंछ आदि वाह्य और अन्तर स्वरूपमें भिन्नता होते हुए भी जातित्वकी एकता हो वही जाति है। कोई एक देश विशेष लेकर कहे कि जो इस रङ्गका जीव हो वह गाय है तो वह कहना समर्थक नहीं होगा। क्योंकि सभी गौवोंमें वैसाही रङ्ग होना सामान्य नहीं है। एक मनुष्य न रहे किन्तु उसका मनुष्यत्व उसका सा रङ्ग रूप आकार प्रकार की मनुष्य जाति रहेगी। व्यक्तियों का आना जाना लगा रहता है; किन्तु जाति नित्य है, शाश्वत है। घड़े बनते रहते हैं, फूटते रहते हैं, किन्तु घटका घटत्व कायम रहता है, कुम्हार जब चाहे तब घड़ा तैयार कर देता और उसमें वही जाति सूचक धर्म मौजूद रहेगा। इस प्रकार सामान्य या जातिके लिये (१) एक तो नित्यत्व आवश्यक है (२) दूसरे अनेक समवेतत्व चाहिये। जातिमें नित्यत्वके साथ-साथ अनेक समवेतत्वका होना आवश्यक है क्योंकि "एक व्यक्ति मात्र वृत्तित्तु न जाति एक व्यक्ति मात्र

में जो वृत्ति होती है वह जाति बोधक नहीं।" उसके लिये तो "नित्यत्वे सति अनेक समवेतत्वम्-जातित्वम्" का सिद्धान्त मुक्तावली कथित लक्षण घटित होना ही चाहिये। सामान्य नित्य एक और अनेक समवेत होता है। सप्तपदार्थी में लिखा है—

सामान्यं नित्यमेकमनेकसमवेतञ्च।

सारांश-यह कि अनेक धर्मियोंमें जो धर्म समवाय सम्बन्ध से प्रभाका ज्ञान करावे वही सामान्य है। जब सामान्य पदके अर्थमें जाति कहें तब उसके साथ नित्यका विशेषण भी देना पड़ेगा। अन्यथा संयोग और विभागकी उसमें अतिव्याप्ति हो जायगी। अभावत्वके समवायसे प्रमा ज्ञान नहीं होता; इसलिये अभावत्व सामान्य नहीं है। यदि कोई कहे कि अभावत्वमें अनुगत की प्रतीति हो सकती है, अतएव उसे भी सामान्य में समझना चाहिये तो उसका समाधान यह है कि वह जाति नहीं है अतएव सामान्य नहीं। ऐसी जगह पर सामान्य लक्षणके समवाय सम्बन्धमें प्रमा ज्ञानका अभाव है।

स्वरूप व्याख्या—सप्त पदार्थीमें सामान्यके सम्बन्धमें (१) नित्यम् (२) एकम् (३) अनेकम् और (४) समवेतञ्च इन चार शब्दों का प्रयोग किया गया है, वे सब सार्थक हैं। क्योंकि ऊपर के विवेचनमें इसका विवरण आ गया है, तथापि यहाँ संक्षेप में फिर लिख देते हैं। **नित्यम्** से सूचित होता है कि संयोग-विभाग, पृथकत्व आदि कुछ ऐसे गुण भी हैं जो एक होते हुए भी अनेकानुगत हैं, उनसे सामान्य का अन्तर जताने के लिये नित्य शब्द बतलाता है कि संयोग-विभाग-पृथकत्व अनित्य है, किन्तु सामान्य का धर्म नित्य होनेसे उनसे भिन्न है। **एकम्** का प्रयोग यह सूचित करता है कि यद्यपि नित्य

द्रव्योंके पृथकपृथक व्यक्तित्व भी नित्य और अनेक समवेत होते हैं; किन्तु विशेष अनेक होते हुए अनेक समवेत होते हैं। और सामान्य एक ही रहते हुए अनेक समवेत होता है। एक जोड़ने से यह अन्तर प्रकट होता है और "विशेष" छूट जाता है। **अनेकम्** अनेकम् वृत्तिसे यह सूचित होता है कि कर्म और रूपादि इससे भिन्न हैं क्योंकि वे एक द्रव्याश्रित होते हैं, एक ही कर्म या रूप दो वस्तुओंमें नहीं रह सकता। **समवेतश्च** शब्द वतलाता है कि अत्यन्ता भाव में अनेक वृत्तित्व और नित्यत्व ये दोनों गुण हैं किन्तु आत्मा आकाश नहीं है यह अत्यन्ताभाव उभयनिष्ठ और नित्य है तो भी इसे सामान्य नहीं कह सकते। सामान्य अपने आश्रयमें समवेतरूप से रहता है किन्तु आश्रय का किसी वस्तुसे समवाय सम्बन्ध नहीं हो सकता। इसलिये साधारण वृत्तिसे विशेषता वतलानेके लिये समवेत शब्द रखा गया है। इस तरह सामान्यकी परिभाषा में एक, समवेत और नित्य सभी शब्द सार्थक हैं।

ऊपर प्रशस्तपादकी व्याख्याके आधार पर हमने जाति या सामान्य का विषय समझाने का प्रयत्न किया है। उसमें भी १ स्वविषय सर्वगत २ अभिन्नात्मक ३ अनेकवृत्तित्व और ४ अनुवृत्तिप्रत्यकारणका प्रयोग समझने योग्य है। **स्वविषयसर्वगत** से यह सूचित होता है कि सामान्य अपने आधारभूत विषयोंमें व्यापक रहता है। एक जातिकी जितनी व्यक्ति है; सवमें उस सामान्यकी व्याप्ति रहती है। जैसे गोत्व जाति सभी गौओंमें समवेत है। **अभिन्नात्मक** शब्द के प्रयोगसे यह सूचित होता है कि व्यक्तिरूप से मनुष्य या कोई द्रव्य भिन्न भिन्न होते हैं। किन्तु उनमें जाति सूचक मनुष्यत्व या द्रव्यत्व सवमें एक

ही रहता है। अर्थात सामान्य भिन्न भिन्न विषयोंमें अवस्थित होते हुए भी स्वयं अभिन्नरूप होता है। **अनेकवृत्ति** का मतलब है कि सामान्यके लिये अनेक विषयोंका होना आवश्यक है। अनेक मनुष्योंमें मनुष्यत्व और अनेक घटोंमें घटत्व समवेत रहनेसे ही उनकी एक जाति होती है। किन्तु आकाशत्व जाति नहीं क्योंकि आकाश एक ही है। **अनुवृत्ति प्रत्यय कारण** एक शब्द है जो सूचित करता है कि एक जातिकी विशेषता उस जातिकी सभी व्यक्तियोंमें एक सी दिखेगी। मनुष्य किसी जातिका हो, किसी देश का हो, किसी रङ्ग रूपका हो परन्तु उसे देखते ही मालूम हो जायगा कि यह मनुष्य है। इसी तरह गाय किसी रङ्गकी हो, छोटी हो या बड़ी हो, किसी देशकी हो परन्तु उसे देखते ही यह अनुभव होगा कि यह गाय है; क्योंकि मनुय में मनुष्यत्व और गाय में गोत्व समान हो उसीकी जाति सूचित करता है। जैसे एक मनुष्यमें उसी तरह लाखोंमें, जैसी एक गायमें उसी तरह लाखों गायोंमें समझ लें। जिन वर्धन सूरिने कहा है "परस्परे विभक्तेपु पदार्थेषुयोऽनुवृत्ति-प्रत्ययो जायते तत्र सामान्य कारणम्।"

सामान्य के भेद—सामान्य दो प्रकारका है १ पर २ अपर। "सामान्य द्विविधं परमपरंचेति प्रशस्या।" सम्पूर्ण सामान्य आश्रयमें जिसकी वर्तमानता रहती है अर्थात जो सबसे अधिक व्यापक होता है-जिसकी वृत्ति अधिकतर विषयोंमें रहती है उसे **पर सामान्य** (Higher) कहते हैं। यह केवल अनुवृत्ति अथवा अनुगत प्रतीतिका हेतु होनेके कारण केवल सामान्य है, क्योंकि जातियोंमें सबसे अधिक व्यापक **सत्ता** होती है; क्योंकि सत्ताकी वृत्ति संसारकी सभी वस्तुओंमें

(द्रव्य, गुण और कर्ममें) रहती है। अतएव यह सत्ता परसामान्य है। इसके विरुद्ध जो सामान्य कर्म व्यापक होता है, अर्थात जिसकी सीमा. संकुचित रहती है उसे अपर (लोअर) सामान्य कहते हैं। पर ऊपर दर्जेका और **अपर** नीचे दर्जे का सामान्य हैं। परको उच्चता देने वाली **सत्ता** है;क्योंकि यह सभी जातियोंमें व्यापक होती है। यह किसी की व्याप्य नहीं। घटत्व नीचे वाला अपर सामान्य है; क्योंकि ये किसी दूसरी जातिके व्यापक नहीं हो सकते, ये व्याप्य मात्र होते हैं। इसीलिये शुद्ध या अपर सामान्य हैं। "सकल जात्यपेक्षया सत्ताया अधिक देश वृत्तित्वात् परत्वम्। तदपेक्षया चान्यासां जातीनामपरत्वम्॥" इन दोनों के मध्यवर्ती "द्रव्यत्व" आदि सामान्य पर भी होते हैं और अपर भी। इसलिये इन्हें **परापर** कहते हैं।

"द्रव्यत्वादिक जातिस्तु परापर तयोच्यते।"

इस प्रकार परसामान्य सत्ता वाला (Summum Gensus), अपर अन्त्य जाति (Infima Specise) जैसे घटत्व-पटत्व और परापर मध्यवर्ती जाति (Subaltern Genera and Species) है जैसे द्रव्यत्व, पृथ्वीत्व आदि।

ऊपर कहा गया है कि साधारणतः सामान्य जाति बोधक है। है किन्तु व्यापक अर्थमें इसे १ जातिरूप और २ उपाधिरूप माना जाता है। जो सामान्य विषयके सम्बन्धसे जाना जाता है, उसे जाति जैसे मनुष्यत्व, गोत्व आदि। इसी तरह जो सामान्य परम्परा सम्बन्धसे जाना जाता है अर्थात विषयके साथ जिसका स्वरूप सम्बन्ध नहीं रहता उसे उपाधि कहते हैं जैसे शृंगित्व।

निर्बाधकं सामान्यं जातिः। सबाधकं सामान्य मुपाधिः॥

जातिको "साक्षात्सम्बन्धसामान्य" और उपाधिको "परम्परा सम्बन्ध सामान्य" भी कह सकते हैं। मनुष्यत्व शुद्ध जाति है और राजत्व औपाधिक सामान्य है। जातिमें जो क्रियापन या क्रियात्व है वह सामान्य अनिर्वचनीय है, वे स्वतः जाने जाते हैं। उन्हें समझनेके लिये विषयान्तरकी अपेक्षा नहीं होती। इसलिये इन्हें अखण्ड सामान्य भी कहते हैं। किन्तु जातिमें जो मूर्तत्व आदि सामान्य निर्वचनीय है, उन्हें समझाने के लिये विषयान्तर की अपेक्षा हो जाती है। "मूर्तत्वं क्रिया श्रयत्वम्' मूर्तत्वको जाननेके लिये क्रियात्वका सहारा लेनापड़ता है, उसका किसी व्यक्तिसे निरपेक्ष सम्बन्ध नहीं है। ऐसे सामान्यको सखण्ड कहते हैं।

सामान्यको जाति माननेमें बाधा—कुछ आचार्य जैसे उदयनाचार्य सामान्यको जाति माननेमें कई बाधाएँ समझते हैं। "व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः। रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधक संग्रहः। किरणावली" उनका कहना है कि पहली बाधा **व्यक्तिका अभेद** है। जैसे आकाश सर्वत्र एक है, उसमें व्यक्ति भेद नहीं हो सकता। अतएव आकाशत्व जाति नहीं हो सकती; दूसरी बाधा **तुल्यत्व** एक ही अर्थके बोधक भिन्न भिन्न शब्द होने पर भिन्न भिन्न जाति नहीं हो सकती। जैसे घटत्व, कलशत्व। तीसरी बाधा **संकरता** है। जहां एक सामान्यके कुछ व्यक्ति दूसरे सामान्यमें और दूसरे सामान्य के कुछ व्यक्ति पहले सामान्यमें आजायँ वहाँ संकरता दोष होता है। "परास्परात्यमन्ताभाव समानाधिकरणयोरेकत्रसमावेशः साङ्कर्यम्।" ऐसी दशामें जाति नहीं समझी जा सकती। जैसे भूतत्वमें

पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मूर्तत्वमें पंच-मूर्त पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, और मन हैं, दोनों सामान्योंमें संकरता हो गयी। अतएव भूतत्व और मूर्तत्वको जाति नहीं मान सकते। चौथी बाधा **अनवस्था** है। सामान्यकी जाति नहीं होती। घटकी जाति घटत्व है। यह घटत्व सामान्य है। अब यदि इसकी जाति मानें तो घटत्व भी जाति घटत्वतात्व माननी पड़ेगी। इसी तरह और आगे बढ़ें तो अनवस्था दोष आ जायगा। अतएव घटत्व प्रभृति जातियोंकी जाति नहीं हो सकती। पांचवींबाधा **रूपहानि** है। जहां जातिकी कल्पना करनेसे व्यक्तिके स्वरूप की हानि हो वहां जाति नहीं हो सकती। जैसे विशेषोंके संख्यक होने पर भी **विशेषत्व** की जाति नहीं हो सकती। क्योंकि विशेष स्वभावतः सामान्यके विरुद्ध धर्म है। अतएव उनकी जाति कल्पना करनेसे उनके स्वरूपकी हानि हो जायगी। छठी बाधा **असम्बद्ध** होने की है। जहां समवाय सम्बन्धका अभाव हो वहां जाति नहीं होती; क्योंकि जाति व्यक्तिमें समवाय-सम्बन्धसे रहती है। किन्तु स्वयं समवायके साथ उसका समवाय सम्बन्ध कैसे हो सकता है? इससे यह निष्कर्ष निकला कि सामान्य, विशेष, अथवा समवायकी जाति नहीं हो सकती। द्रव्य के गुण और कर्ममें ही जातिकी वृत्ति रहती है। सामान्यतः सामान्य शब्दसे जातिका ही ग्रहण होता है, उपाधिका नहीं। सामान्य और जाति दोनों पर्यायके रूपमें व्यवहृत होते हैं; किन्तु सामान्यको, सामान्य नामसे ही सम्बोधन करना अच्छा है।

पदार्थभेद

विशेष

(Particularity)

परिभाषा—सामान्य पदार्थ जातिवाचक धर्म वाला होता किन्तु "विशेष" व्यक्ति वाचक होना है। जो वस्तु एक व्यक्तिको संसारके और सभी व्यक्तियोंसे भिन्न व्यक्त करती है अर्थात अलग करती है, उसे विशेष कहते हैं। विशेषके लक्षणमें कहा गया है।

अत्यन्त व्यावृत्तिहेतुर्विशेषः

जो अत्यन्त व्यावृत्तिका हेतुहो उसे विशेष कहते हैं। व्यवृत्ति का अर्थ बिलगाना-अलग करना है। जो औरोंसे, अन्य समूहसे यहाँ तक कि संसारके सभी व्यक्तियोंसे एकको अलग निर्देश करे वह विशेष है। प्रशस्तपादभाष्यमें इसकी परिभाषा यों लिखी है।

नित्यद्रव्यवृत्तयो ह्यन्त्या विशेषाः

अर्थात नित्य द्रव्यवृत्तिवाला जो अंतिम पदाथ है वही विशेष है। इसके पहले अनुवृत्ति हेतु धम को सामान्य कहा गया था और व्यावृत्तिके (अलगाव करनेके) हेतुधर्मको विशेष कहा गया था। ऊपर विशेष शब्दके साथ बहुवचनका प्रयोग हुआ है उससे विशेषको नानात्व रूप देने की आचार्यकी इच्छा मालूम होती है। नित्य द्रव्यवृत्ति उसीको कहेंगे जो सर्वदा द्रव्यमें समवेत हो। केवल मात्र द्रव्य समवेत नहीं, क्योंकि उससे द्रव्य कर्म और घटत्वादिमें अतिव्याप्ति होनेका भय

है, इसलिये सर्वदा द्रव्य समवेत समझना चाहिये । समवेत द्रव्य मात्र उत्पत्ति के पहले वे द्रव्य समवेत नहीं रहते, यही नहीं वल्कि विनाशके पश्चात भी वे द्रव्यसमवेत नहीं होते । कर्म जन्य कहा जाय तो वह भी नाशवान है । वह भी सदा द्रव्यमें समवेत नहीं रहता । घटत्व घटमें ही समवाय सम्बन्ध से रहता है । सृष्टिके आदिमें और प्रलय कालमें घटकी कोई सत्ता नही रहती; अतएव घटत्व द्रव्य समवेत नहीं हो सकता । इस प्रकार इन पदार्थोंमें अतिव्याप्ति नहीं होगी । गुणत्व द्रव्यमें समवेत होता ही नहीं, गुणका ही उसमें समवाय सम्बन्ध होता है। इस प्रकार द्रव्य पदके द्वारा गुणत्वका व्यावर्तन किया गया है ।

जो सर्वदा द्रव्यमें समवेत हो उसे विशेष कहें तो आकाश परिमाण तक के नित्य गुण और द्रव्यत्वकी अतिव्याप्ति होगी । क्योंकि आकाश और आकाशपरिमाणादि नित्य होने से आकाश प्रभृतिमें आकाशपरिमाणादि नित्य समवेत ही है। द्रव्यत्व नित्य द्रव्य आकाशादिमें है ही; अतएव सर्वदा द्रव्य समवेत हो सकता है । इस अतिव्याप्तिका निवारण करने के लिये कहना पड़ेगा कि "जो सर्वदा नित्य द्रव्यमें रहता है अथच नित्य द्रव्यवृत्ति जाति और गुणसे भिन्न हैं, उसीको विशेष कहते हैं ।" द्रव्यत्व और नित्य गुण सर्वदा नित्य द्रव्यमें समवेत होने पर भी वह जाति और गुणसे भिन्न नहीं है, अतएव उसमें अति-व्याप्ति नहीं हुई ।

कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जाति और जातिमतसे भिन्न होकर जो केवल नित्य द्रव्यमें समवेत हो वही विशेष है । द्रव्यत्वादि जाति और नित्य गुण जातिमत् हैं, इससे अतिव्या-

प्तिका निवारण होगा। अन्त्य शब्द भी गड़बड़ी मचा रहा है। कुछका कहना है कि अन्त्य अर्थ महाप्रलयमें वर्तमान रहता है। ऐसा अर्थ करनेसे कर्ममें जो अतिव्याप्ति हो सकती है उसका निवारण होता है। केवल अन्त्य कहनेसे घटत्वादि जाति की नित्यता हेतु और घटादिध्वंसके महाप्रलयमें वर्तमानता निबन्धन घटत्व और घटादिध्वंसमें अतिव्याप्ति होती है। ऐसी दशामें नित्य द्रव्यवृत्ति अर्थात् नित्यद्रव्यमात्र समवेत ऐसा विशेषण दिया जाय। किन्तु वैसा विशेषण देने पर भी नित्य गुण और आत्मत्वजातिमें अतिव्याप्ति होती है। क्योंकि नित्य गुण और आत्मत्व जाति अन्त्य और नित्यद्रव्य मात्रमें समवेत हैं। इसलिये लक्षणमें कहना पड़ेगा कि जो कर्मावृत्ति जाति शून्य एवं नित्य इन दो वस्तुओंसे समवेत न हो अथच अन्त्य और नित्य द्रव्य समवेत हो वही विशेष है। नित्य गुणमें कर्म वृत्ति गुणत्वादि जाति होती है; इसलिये वह कर्म वृत्ति जातिशून्य नहीं है। आत्मत्व जाति अनेक आत्मामें रहती है; अतएव वह नित्य द्रव्यमें असमवेत नहीं है। अतएव उक्त दो स्थलमें अब अतिव्याप्ति नहीं हो सकती।

वास्तविकमें अन्त्य अर्थात चरमविशेषका जिसकी अपेक्षा अन्य विशेष अथवा व्यावर्तक धर्म नहीं है, उसीको अन्त्य कहना चाहिये। इस अर्थके द्वारा स्वतोव्यावृत्तत्व ही विशेषका अन्तिम लक्षण ठहरता है। ऐसी कल्पनामें नित्य द्रव्यवृत्ति प्रभृति विशेषको स्थान कथन मात्र है, वह लक्षणमें नहीं आता। नव्यनैयायिक विशेषको स्वतोव्यावृत्त स्वीकार न कर निरवयव द्रव्यको ही स्वतोव्यावृत्तत्व स्वीकार करते हैं। इसलिये उन्हें कोई विशेष पदार्थ माननेकी आवश्यकता नहीं।

किन्तु कणादके मतसे यह विशेष पदार्थ स्वीकार करनेके ही कारण इसका नाम वैशेषिक पड़ा है।

अन्त्य विशेष क्या है—अब कणादका वह विशेष पदार्थ क्या है ? जो सामान्य व्यावर्तक होते हुए भी अन्त्य व्यावर्तक हो। अपर की व्याख्या रूप इस पहेलीको यों सुरझाइये। घटत्व कोई द्रव्य हो, किन्तु सबके संघटनात्मक परमाणु अवश्य ही भिन्न भिन्न होते हैं। प्रत्येक परमाणुका अपना अलग व्यक्तित्व है। हमारी समझमें इसी व्यक्तित्वका नाम विशेष है। एक विशेष एक ही व्यक्तिमें पाया जा सकता है अन्य किसीमें नहीं। इसीके कारण प्रत्येक मूलवस्तु अपनी पृथक सत्ता रखती है। इस प्रकार विशेषके द्वारा ही अत्यन्त व्यावृत्ति होती है। इसलिये विशेषको अन्त्य व्यावर्तक कहा गया है। कार्यद्रव्योंका अस्तित्व सर्वदा नहीं रहता; अतएव उनका कोई खास व्यक्तित्व या विशेष नहीं होता; किन्तु कारणभूत द्रव्यों अर्थात परमाणुओं में प्रत्येकका व्यक्तित्व सर्वदा एक सा बना रहता है। इसलिये विशेष नित्य परमाणुमें ही रहता है, अनित्य कार्यमें नहीं। आकाश, काल, आत्मा प्रभृति नित्य द्रव्य भी अपना अलग अलग व्यक्तित्व रखते हैं। अत: वे भी विशेष व्यावर्तक होते हैं और उनकी वृत्ति नित्य द्रव्योंमें अर्थात दिक, काल, आकाश, आत्मा, मन और परमाणुओंमें रहती है। किन्तु द्रव्य-संघटनामें परमाणुओंका ही विशेष भाग रहता है। द्रव्योंके मूल-भूत परमाणु कार्यकी उत्पत्तिसे पूर्व और विनाशकी अव-स्थामें पश्चात भी ज्योंके त्यों बने रहते हैं। परमाणु चाहे जिस स्थितिमें चाहे जिस अवस्थामें रहें उनका व्यक्तित्व सर्वदा उनके साथ रहता है। यदि अलग व्यक्तित्व न हो तो एक परमाणुका

दूसरे परमाणुसे कुछ भेद ही प्रकट न हो। विशेषके ही कारण प्रत्येक परमाणुका विशिष्ट स्वरूप होता है। इसलिये आत्मा आकाशादि को छोड़ कर हम प्रोफेसर हरिमोहन झामे सहमत होते हुए परमाणुको ही विशेष मानते हैं। विशेषका व्यावर्तक लक्षण, शिवादित्य यों देते हैं :—

विशेषस्तु सामान्य रहित एक व्यक्तिवृत्तिः

अर्थात विशेष एक ही व्यक्तिमें समवेत रहता है। जिस से सामान्य इससे अलग हो जाता है। रहा समवाय सो वह न तो एक वृत्तिक है और न समवेत अतएव वह भी छूँट गया। अब रहे द्रव्य-गुण-कर्म, इनमेंसे कर्म तथा रूपादि गुण कुछ ऐसे होते हैं जिनकी वृत्ति एक ही व्यक्ति में होती है; किन्तु वे सब जातिमान होते हैं और द्रव्य-गुण-कर्म इन तीनोंके सामान्य होते हैं। किन्तु विशेष का सामान्य नहीं होता। अतः द्रव्य-गुण-कर्मसे भेद दिखानेके लिये विशेषकी परिभाषामें 'सामान्य रहित' विशेषण जोड़ा गया है। इस प्रकार सामान्य रहित और एक व्यक्तिवृत्ति इन दोनों शब्दोंसे द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-समवाय और अभावका वर्जन हो गया। अब विशेष मात्र रह गया जो परमाणु रूप हैं। इस विशेषका प्रत्यक्ष योगियोंको उसी प्रकार होता है जिस प्रकार हमें चर्मचक्षुओंसे द्रव्य-गुण-कर्मका प्रत्यक्ष होता है। यह परमाणु ही सारे द्रव्योंके मूलघटक हैं। अतएव इन्हें विशेष कहा गया है।

———

पदार्थ विवेचन

समवाय

(Inherence)

सम्बन्ध—छठा पदार्थ समवाय है। जो भाव पदार्थों में अन्तिम है। कोई भी वस्तु किसी वस्तुके साथ बिना किसी सम्बन्धके नहीं रह सकती। जब दो विभिन्न वस्तु एक साथ मिलकर रहना चाहें तब दोनोंमें एक सम्बन्ध स्थापित होने की आवश्यकता रहती है। इस प्रकारका सम्बन्ध दो प्रकारका होता है, एक **संयोग** और दूसरा **समवाय**। संयोग सम्बन्ध उन वस्तुओंमें होता है जो संयोगके बिना भी अपनी अपनी पृथक सत्ता रख सकती हैं। वह सम्बन्ध अनित्य होता है, कुछ काल तक उसकी सत्ता बनी रहती है और फिर भंग हो जाती है। मान लीजिये एक वृक्ष पर एक पक्षी उड़कर आ बैठा। यहाँ वृक्षसे उस पक्षी का संयोग हुआ। दोनों में एक सम्बन्ध स्थापित हुआ। अब उस पक्षीकी अन्य पक्षियोंसे भिन्नता हुई। ऐसा न होता तो दूसरे पक्षियोंका भी मिलन मान लिया जा सकता था। अब यदि वह पक्षी उड़ जाय तो सम्बन्ध भी विच्छेद हो जायगा अर्थात संयोग अनित्य है। जब चाहे तब संयोग भङ्ग हो सकता है। घड़े और रस्सीका संयोग ऐसा ही संयोग है। घड़ेमें रस्सी बाँधकर दोनों का **युत सिद्ध** सम्बन्ध हुआ। कुंएसे पानी भर लिया गया, उस युतसिद्ध सम्बन्धसे एक कार्य घटित हुआ और घड़ेके गलेसे रस्सी अलग कर ली गयी, संयोग भंग हो गया। यह सम्बन्ध

न सर्वदासे था न सर्वदा तक रहेगा। यहाँ पर घड़े और रस्मीका सम्बन्ध गुण-क्रियाका द्रव्यसे मिलन हुआ । अतएव युतसिद्ध वस्तुओंके अनित्य वाह्य सम्बन्धको संयोग कहते हैं। दूसरा सम्बन्ध **समवाय** सम्बन्ध है । इसे नित्य सम्बन्ध कहते हैं।

नित्य सम्बन्धः समवायः

समवाय सम्बन्ध संयोग सम्बन्धसे बिलकुल भिन्न और नित्य अर्थात स्थायी सम्बन्ध होता है। अंग अंगीमें, गुण-गुणवानमें, क्रिया-क्रियावानमें, जाति और व्यक्तियोंमें तथा विशेष-नित्य द्रव्योंमें यह निवास करता है। समग्रवस्त्र अपने अवयव-भूत तन्तुओंमें रहता है, लालिमा गुलाबके फूलमें, मनुष्यत्व मनुष्योंमें एवं विशेष आत्मा तथा परमाणु नित्य द्रव्योंमें निवास करते हैं, इनमें दोनोंका सम्बन्ध समवायके द्वारा सम्पन्न होता है । समवायकी विशेषता उसकी नित्यता है। इस नित्य सम्बन्धको **अयुतसिद्ध** सम्बन्ध कहते हैं। जब तक उन पदार्थों की सत्ता बनी रहती है, तब तक समवाय सम्बन्ध की भी सत्ता रहती है। इस समवाय सम्बन्धके कारण कार्य-कारणके विषयकी विशिष्ट कल्पना अवलम्बित है। आयुर्वेदमें समवाय सम्बन्धका महत्वपूर्ण स्थान है।

परिभाषा—द्रव्य गुण और क्रियाके साथ जातिका मिलन और नित्य द्रव्यमें विशेषके मिलनको समवाय सम्बन्ध कहते हैं। संयोग सम्बन्धमें जिस प्रकार दोनों सम्बन्धियोंकी सत्ता अलग अलग रहती है, उस प्रकार समवाय सम्बन्धमें दोनों सम्बन्धियों की सत्ता पृथक् भावसे नहीं रहती। जैसे घड़ा जिस मिट्टीसे बना वह मिट्टी उस घड़ेको छोड़कर जब तक घड़ा

मौजूद है, अलग नहीं रह सकती। यही क्यों घटका रूप रङ्ग घड़ेके अवयवको छोड़ अलग नहीं रह सकता। इसलिये कहना होगा कि आश्रय और आश्रयी भावसे अवस्थित जो वस्तु परस्पर पृथक रूपसे नहीं रह सकती, उसके वैशिष्ट्य प्रतीतिके हेतुभूत सम्बन्ध विशेषका नाम समवाय सम्बन्ध है। जैसे गुण और क्रिया प्रभृति द्रव्यमें आश्रय-आश्रयीभावसे अवस्थित हैं और दोनोंकी पृथक रूपसे कभी भी स्थिति नहीं रहती। यही क्यों उन दोनोंके मिलनसे ही द्रव्यमें गुण और क्रियाकी विद्यमानता है। ऐसी प्रतीति होती है। दोनोंके इसी सम्बन्ध को समवाय सम्बन्ध कहते हैं। अग्निवेश कहते हैं—

समवायोऽपृथग्भावो भूम्यादीनां गुणैर्मतः
स नित्यो, यत्र हि द्रव्यं न तत्रानियतो गुणः
यत्रा स्थिता कर्म गुणाः कारणं समवायितत्
तद् द्रव्यं, समवायांतु निश्चेष्टः कारणं गुणः

अर्थात् पृथ्वी आदि द्रव्योंका गुण-क्रियाके अपृथग्भाव रूपका जो सम्बन्ध है उसे समवाय सम्बन्ध कहते हैं। द्रव्य न तो गुण-क्रियाके विना रह सकते और न गुण क्रिया द्रव्यके विना अलग रह सकतीं। यह समवाय सम्बन्ध **अयुत सिद्ध-सम्बन्ध** है और नित्य है। अलग अलग वे नहीं रह सकते। यही उनके नित्यत्वका हेतु हैं। जहां पर द्रव्य है वहां उसका गुण और उसकी क्रिया भी रहेगी। द्रव्य और गुण-क्रियाका नियत सम्बन्ध ही समवाय सम्बन्धकी नित्यता सूचित करता है। यदि कहा जाय कि द्रव्य गुण सत्ता द्रव्य की अपरिणत अवस्थामें नहीं रहती; जैसे औषधद्रव्योंमें रसकी उपस्थिति कच्चेपनमें तादृश नहीं रहती; अतएव नित्य सम्बन्धका खण्डन

होता है तो इसका उत्तर यह है कि द्रव्यमें रसादि गुणों की उपस्थिति तो रहती है किन्तु अपक्क अथवा अपरिणत अवस्थामें सूक्ष्मताके कारण उसकी उपलब्धि नहीं होती। द्रव्यका द्रव्यत्व उसकी गुणक्रियाके साथ ही रहता है। क्योंकि द्रव्य वही है जिसमें कर्म और गुण आश्रित है और जिसमें समवायीका कारण है और गुणोंके साथ उनका समवायि सम्बन्ध है। द्रव्यके साथ समवायी सम्बन्ध वाला निश्चेष्ट एवं कारणवान गुण भी है। इनका आधाराधेय्य सम्बन्ध ही अयुतसिद्ध समवाय है। अयुतसिद्ध वस्तुओंका यह लक्षण है कि जब तक उनमेंसे किसी का विनाश नहीं होता तब तक वे एक दूसरेमें ही आश्रित रहते हैं।

विशेष बातें—सारांश यह कि (१) संयोगी पदार्थ पहले अलग अलग रहते हैं किन्तु समवेत पदार्थ कभी अलग नहीं रहते (२) संयोग, विभागके द्वारा नाशको प्राप्त हो जाता है किन्तु समवाय सम्बन्ध कभी नष्ट नहीं होता। (३) संयोग दो स्वतन्त्र वस्तुओंमें होता है; किन्तु समवाय सम्बन्ध आधार और आधेयमें ही हो सकता है। (४) संयोग एक पक्ष या उभय पक्षके कर्मसे उत्पन्न होता है, किन्तु समवाय सम्बन्ध किसीके कर्मसे उत्पन्न नहीं होता। एक पक्षका उदाहरण वृक्ष और पक्षीका ऊपर दिया है। उभयपक्षमें समझ लीजिये कि दो पक्षी अलग अलग ओर से उड़कर आकर एक साथ मिल गये। (५) समवायसे सम्बद्ध वस्तुएं एक दूसरीसे अलग नहीं की जा सकती। जब तक अस्तित्व है तब तक उनका सम्बन्ध विच्छेद नहीं हो सकता। जब तक घट रहेगा तब तक उसका घटत्व बना रहेगा (६) संयोग बाह्य और कृत्रिम सम्बन्ध है और

समवाय आन्तरिक और नैसर्गिक है। कमलकी सुगन्धि नींबूकी अम्लता, दन्तीकी विरेचन कर्म की शक्ति उसका समवाय सम्बन्ध है । (७) जहाँ दो सम्बन्धियों के सम्बन्ध मालूम पड़े कि नित्य वर्तमान हैं वहाँ समवाय सम्बन्ध समझें । (८) समवाय सत्ताकी तरह एक ही है संयोग की तरह अनेक नहीं। समवाय चाहे अवयव और अवयवीमें हो या जाति और व्यक्तिमें किन्तु इसका स्वरूप सर्वदा आधाराधेयात्मक ही होता है। (९) समवाय नित्य है। संयोग की तरह सम्बन्ध नष्ट होजाने पर नष्ट नहीं होता बल्कि सत्ता की तरह स्वतन्त्र और स्वात्म-वृत्ति वाला होता है। (१०) समवाय सम्बन्ध अतीन्द्रिय होता है; इसलिये उसका ज्ञान प्रत्यक्षके द्वारा सम्भव नहीं। अनुभवके द्वारा ही जाना जा सकता है।

कुछ और सम्बन्ध के उदाहरण—(१) भूमि पर घड़ा रखा है, यह भी आश्रयाश्रयी भावसे अवस्थित है; किंतु वे अपृथक् भावसे अवस्थित नहीं। क्योंकि भूमिपर रखे रहनेके पहले वे दोनों अलग थे और वहाँसे हटा लेने पर फिर अलग हो जायँगे। अतएव वहाँ समवाय सम्बन्ध नहीं। (२) धर्म और सुख, अधर्म और दुःखका भी परस्पर सम्बन्ध है। धर्मको छोड़कर सुख और अधर्मको छोड़कर दुःख नहीं रह सकते। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि धर्मके साथ सुख और अधर्मके साथ दुःख रहें ही। इसलिये इनमें परस्पर सामानाधिकरण्य सम्बन्धमें अति-व्याप्ति नहीं होती। अतएव समवाय सम्बन्ध भी नहीं। वे दोनों आत्मामें रहते हैं, अयुतसिद्ध नहीं। (३) वस्त्रमें समवाय सम्बन्ध है; क्योंकि वस्त्रमें तन्तु अवयव और वस्त्र अवयवी है। वस्त्र कभी सूत्रके विना नहीं था और न रह सकता। वह सूतों में

ही समवेत रहता है। (४) गुण और गुणीमें समवाय है जैसे अग्नि और उष्णत्वमें उष्णत्व गुण आश्रयी और अग्नि द्रव्य गुणी और आश्रय है। अग्नि विना उष्णत्वके नहीं रह सकता। (५) क्रिया और क्रियावानमें समवाय सम्बन्ध रहता है। जैसे वायु और उसकी गति। वायु क्रियावान और गति उसकी क्रिया है। क्रिया अपने आधारभूत द्रव्यसे कभी पृथक नहीं की जा सकती। (६) जाति और व्यक्तिमें समवाय सम्बन्ध है। जैसे मनुष्यत्व जाति मनुष्य व्यक्तिमें समवेत रहती है। (७) विशेष और नित्य द्रव्यमें भी समवाय रहता है। जैसे आकाशमें आकाशत्व विशेष है, समवेत रहता है। (८) वास्तवमें नित्य सम्बन्ध ही समवायका लक्षण है। (९) समवाय एक मात्र है, व्यक्ति भेद में पृथक् नहीं इसलिये घड़ेके फूटने पर भी वस्त्रके फटने पर भी उनका रूप नष्ट होने पर भी गगन परिमाणादि नित्य वस्तु की वर्तमानता रहती है, उनका सम्बन्ध समवाय और नित्य द्रव्य चिरंतन हैं अतएव दोष नहीं। उपयुक्त ही है।

अभाव

सामयिक विचार—ऊपर आयुर्वेद सम्मत वैशेषिकके छः पदार्थों का वर्णन हो चुका। अव न्याय और वैशेषिकके नये आचार्य एक और पदार्थ अभावका भी वर्णन करते हैं। शिवादित्यने अपने ग्रन्थका नाम ही "सप्तपदार्थी" रखा है। तर्क संग्रह में अन्नन भट्टने भी "द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवाय-आभावाः सप्त पदार्थाः" कह सात पदार्थोंकी गणना की है। भाषा परिच्छेद, सिद्धान्त मुक्तावली, न्याय कुसुमाञ्जली आदि सभी न्याय

वैशेषिक ग्रन्थोंमें सात पदार्थों का वर्णन है। सत और असत, सुख और दुःख, पर और अपर की तरह भाव और अभाव मान कर भावकी अनुपस्थिति को अभाव कह सकते हैं। सत्-ज्ञेय और अभिधेय का अर्थ ग्रहण करने पर भी अभाव पदार्थ नहीं ठहरता। किन्तु भावका अभाव कुछ खटकने वाली बात होती है। इसलिये हम भी उसका जिक्र किये देते हैं। मालूम पड़ता है वैशेषिक सिद्धान्तकी पूर्तिके लिये अभावकी कल्पना की गयी है। वास्तववादके लिये अभाव की सत्ता आवश्यक प्रतीत हुई। वैशेषिक सिद्धान्तके अनुसार मुक्तिका स्वरूप दुःखका अत्यन्ता-भाव माना गया है। अतएव जब तक अभावका ज्ञान न हो तब तक दुःखके अत्यन्ताभावका मतलब समझना सुकर नहीं हो सकता। कणाद ने भी अभावका जिक्र किया है; किन्तु पदार्थ रूपसे नहीं। यों तो आयुर्वेदमें भी विषय विवेचनके समय अभावका प्रयोग होता ही है। यदि माना जाय कि ज्ञानके विषयमात्र पदार्थ हैं तब अभाव ही क्यों शेष रहे। यों तो भावको भी अभावरूपमें ग्रहण कर सकते हैं। जैसे राम है यह भाव, राम नहीं है यह शुद्ध अभाव है; किन्तु राम का अभाव है, यह भावात्मक अभाव है।

परिभाषा—यह सन्देह तो हो सकता है कि यदि भाव के अभावको "अभाव" कहते हैं, तो फिर अभावके अभावको क्या कहेंगे? उत्तर हो सकता है कि अभावका अभाव भाव होगा, किन्तु यह भी विवादास्पद माना गया है। जो हो अभाव की परिभाषा।

प्रतियोगि ज्ञानाधीन ज्ञानोऽभावः

इस सप्तपदार्थीके कथनके अनुसार मतलब यही है कि जिस पदार्थका ज्ञान उसके प्रतियोगी अर्थात विरोधीके ज्ञानके विना न हो सके उसे अभाव कहते हैं। भावका अभाव ही अभाव है। भाव तो वर्तमान होनेसे आपही जाना जा सकता है। किन्तु भावका ज्ञान हुए विना अभाव अपने आप नहीं जाना जा सकता। अर्थात अभावका ज्ञान उसके विरोधी पदार्थके ज्ञान पर ही निर्भर है।

प्रकार—मोटे तौर पर अभावके दो भेद १ संसर्गाभाव और २ अन्योन्याभाव हैं। संसर्गाभाव दो वस्तुओंमें होने वाले संसर्ग या सम्बन्धका निषेध सूचित करता है अर्थात कोई वस्तु अन्य वस्तुमें नहीं है। वृक्ष पर पक्षी नहीं है। यहाँ वृक्ष और पक्षी के संसर्गका अभाव सूचित होता है। सम्भव है पहले रहा हो; किन्तु इस समय नहीं है। अन्योन्याभावका मतलब यह है कि एक वस्तु दूसरीमें नहीं है। किन्तु संसर्गाभावके तीन भेद हो सकते हैं १ प्रागभाव २ प्रध्वंसाभाव और ३ अत्यन्ताभाव। अन्योन्याभावके भेद नहीं होते। अतएव सबको मिलाकर अभाव चार प्रकारका हो जाता है। वृक्ष पर पक्षी नहीं है यह तो सामान्यसंसर्गाभाव हुआ, किन्तु पक्षी वृक्ष नहीं है यह अन्योन्याभाव हुआ। अर्थात पक्षी और वृक्षका अन्योन्य सम्बन्ध नहीं है। इसको सूचित करता है।

प्रागभाव—की परिभाषा उत्पत्तिके पहले कारणमें कार्यका अभाव अर्थात पहले होनेवाला अभाव "उत्पत्तेः पूर्वं कार्यस्य" प्रागभाव है। जैसे कहा जाय कि अब सितोपलादि बनेगा। अर्थात इस समय उपस्थित नहीं है; किन्तु मिश्री, वंशलोचन,

पिप्पली, इलायची, दालचीनी मौजूद है, खरल लोढा और कूटने वाला मौजूद है। कूटपिस कर अभी तैयार होता है। यह हुआ उत्पन्न होने के पहलेका अभाव। मालूम नहीं कबसे सितोपलादि नही है, इसलिये प्रागभाव अनादि है; किन्तु अभी तैयार होता है अर्थात तुरन्त अभावका अन्त होने वाला है अतएव सान्त है। "अनादिः सान्तः प्रागभावः"= याय वैशेषिक वाले इसे **आरम्भवाद** कहते हैं; क्योंकि आरम्भके पहले इसमें कार्य का सर्वथा अभाव और कार्यारम्भके साथ ही प्रागभावका नाश "प्रागभाव प्रतियोगि कार्यम्" कारण विशेषसे जिसका प्रथमारम्भ हो वह आरम्भवाद है। जिसका अभाव रहता है। उसे प्रतियोगी कहते हैं।

प्रध्वंसाभाव—उत्पत्तिके पीछे कारणमें कार्यके होनेवाले अभावको प्रध्वंसाभाव कहते हैं। 'विनाशानन्तर' कार्यस्य' कार्यका विनाश हो जाने पर उस कार्यका अभाव ही प्रध्वंसाभाव है। घड़ा फूट गया कहनेसे विदित होता है कि उसका भाव नष्ट हुआ और अभाव आरम्भ हुआ। घड़ेके फूटनेके साथ अभाव आरम्भ होता है; अतएव यह **सादि** है और अब उसी घड़ेका होना असम्भव है; अतएव अनन्त है। "सादिरनन्तः प्रध्वंसाभावः"।

अत्यन्ताभाव—जहाँ दो वस्तुओंका संसर्ग वर्तमान-भूत-भविष्य तीनों कालमें विद्यमान न रहे वहाँ अत्यन्ताभाव होता है "त्रैकालिक संसर्गाभावोऽत्यन्ताभावः" कोई भी वस्तु किसी अधिकरणमें संसर्ग विशेषसे ही विद्यमान रह सकती है। जैसे भूतल पर घट की स्थिति संयोग सम्बन्धसे है, समवाय सम्बन्धसे

नहीं। अतः भूतलपर घटके होने का प्रत्यक्ष अनुभव होने पर भी भूतलपर समवाय सम्बन्धसे घटका अत्यन्ताभाव है। इसी तरह फूलमें सुगन्धि समवाय सम्बन्धसे है, संयोगसे नहीं। इसलिये इस फूलमें संयोग सम्बन्धसे गन्धका अत्यन्ताभाव है। इस अत्यन्ताभावमें प्रतियोगिता संसर्गावच्छिन्न होती है। अर्थात किसी संसर्ग विशेषका अवलम्बन करके ही किसी वस्तु का अन्य वस्तुमें अभाव स्वीकार किया जाता है। प्रागभाव की तरह यह न तो उत्पत्तिसे सम्बद्ध है और न प्रध्वंसाभाव की तरह उत्पत्तिके नाशसे, अतः अनादि भी है और अनन्त भी। जैसे वायु में रूपका अभाव त्रैकालिक है। 'अनादिरनन्तोऽत्यन्ताभावः'। इसमें वस्तुओंका अभाव नहीं; किन्तु उनके संसर्ग का अभाव सूचित होता है। वायुमें रूप नहीं। इससे न तो वायु का अभाव सूचित होता और न रूपका; वल्कि वायुमें रूपके संसर्ग अर्थात समवायके अभावकी सूचना मिलती है। इसलिये इसे समवायाभाव भी कहते हैं।

अन्योन्याभाव—एक वस्तुमें दूसरी वस्तुसे भेद होने पर अन्योन्याभाव होता है। दो वतुस्ओंमें पारस्परिक भिन्नता ही इसका द्योतक है "तादात्म्य निषेधोऽत्यन्ताभावः"। जैसे घट, पट नहीं है। इसमें घट से पटकी और पटसे घट की भिन्नता स्वीकृत की जाती है। अर्थात न घट पट है न पट घट है। दोनोंमें एक दूसरे का अन्योन्य अभाव है। अर्थात दोनोंमें तादात्म्यसम्बन्धका अभाव है। अन्योन्याभाव और अत्यन्ताभावमें एक वारीक भेद है। अन्योन्याभावमें कहा जायगा कि "घट पट नहीं है" अर्थात घट और पट में तादात्म्यभाव नहीं है। तादात्म्यका अभाव या निषेध है। इसके विरुद्ध अत्यन्ताभावमें कहा जायगा कि "घटमें पटत्व नहीं है"। अर्थात घटमें पटत्वका संसर्ग निषेध है।

अर्थात अत्यन्ताभावकी प्रतियोगिता संसर्गको लेकर और अन्यो-न्याभाव की प्रतियोगिता तादात्म्य सम्बन्धको लेकर होती है "संस-र्गावच्छिन्न प्रतियोगिताभाव: अत्यन्ताभाव: । तादात्म्य सम्बन्धा-वच्छिन्न प्रतियोगिता श्च अन्योन्याभाव:" । तर्कसंग्रह । कुछ आचार्यो ने सामयिकाभाव नामके एक अभावकी और भी कल्पना की है । जहाँ किसी वस्तुका एक स्थान पर कुछ समयके लिये सामयिक अभाव हो किन्तु सम्भवत: दूसरी जगह भाव हो वहाँ अभाव की जगह सामयिक अभाव हो; किन्तु सम्भ-वत: दूसरी जगह भाव हो वहाँ अभाव की जगह सामयिकाभाव होगा । जैसे कहा जाय कि इस समय यहाँ घटका अभाव है । अर्थात अभी कुछ समयके लिये अभाव हुआ है । पहले घड़ा था वह अब यहाँसे हटाकर दूसरी जगह रख दिया गया है । इसमें न तो प्रागभाव लागू होता, न प्रध्वंसाभाव और न अन्यन्ताभाव क्योंकि घड़ा उत्पन्न हो चुका है, इसलिये प्रागभाव नहीं घटा, नष्ट नहीं हुआ इसलिये प्रध्वंसाभाव नहीं और घड़ेका अभाव त्रैकालिक नहीं इसलिये अत्यन्ताभाव नहीं और अन्योन्याभाव तो हो ही नहीं सकता; क्योंकि प्रतियोगितामें तादात्म्यके लिये दूसरी वस्तु नहीं है ।

अभावके अंग-न्यायमें अभावके ५ अंग माने गये हैं । १ प्रतियोगी २ अनुयोगी ३ प्रतियोगितावच्छेदक धर्म ४ अनुयो-गितावच्छेदकधर्म और ५ प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध । मान लीजिये अत्यन्ताभावका उदाहरण है कि जलमें गन्ध नहीं । अब इसके पांचों अंगोंको समझिये—

१ प्रतियोगी—अभाव किसका है ? गन्धका, अतः वहाँ गन्ध प्रतियोगी है ।

२ अनुयोगी—आधार अभाव किसमें है ? जलमें, अतः यहां जल अनुयोगी है।

३ प्रतियोगितावच्छेदक धर्म—अभावकी प्रतियोगिता किसी विशेष गन्धमें है या गन्ध मात्रमें ? किन्तु यहाँ गन्ध विशेष अभिप्रेत नहीं, गन्धत्व जातिसे मतलब है। अतः इसे प्रतियोगितावच्छेदक धर्म कहेंगे।

४ अनुयोगिता वच्छेदकधर्म—गन्धका अभाव किसी खास जलमें है या जल मात्रमें ? यहां अभाव की वृत्ति जलके सम्पूर्ण देशमें होनेसे इस जलमें नहीं, जलत्व मात्रमें है, अतः अनुयोगितावच्छेदक धर्म है।

५ प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध—गन्धके संयोग सम्बन्धका निषेध है या समवाय सम्बन्धका ? गन्ध जलमें समवेत नहीं, समवाय सम्बन्धसे जलमें गन्धका अभाव है। अतः यहाँ प्रतियोगितावच्छेदक सम्बन्ध है, समवाय नकि संयोग। प्रत्येक द्रव्य भावात्मक और अभावात्मक होता है। उसमें कुछ गुण-धर्मोंका भाव और कुछका अभाव होता है। कुछ लोग अभावको केवलाधिकरण शून्य आधार मात्र मानते हैं। कोई अनुपलब्धि और कोई योग्यानुपलब्धि कहते हैं। अर्थात् योग्य रूपकी उपलब्धि न होना अभाव है। आधार और उसमें अनुपलब्धिके ज्ञानपर अभावका ज्ञान निर्भर है। एक जगह किसी वस्तुका अभाव है तो दूसरी जगह उसका भाव भी है। कासमें मिठास नहीं तो कासमें न सही ऊखमें तो मिठास है और उस मधुरता पर संसार मुग्ध है, प्रसन्न है, तृप्त है। यहाँ तक पदार्थोंका विवेचन हुआ। गौतमने १६ पदार्थ १ प्रमाण २ प्रमेय ३ संशय ४ प्रयोजन ५ दृष्टान्त ६ सिद्धान्त ७ अवयव ८ तर्क ९ निर्णय १० वाद ११ जल्प १२ वितण्डा १३ हेत्वाभास

१४ छल १५ जाति और १६ निग्रहस्थान माने हैं। परन्तु ये पदार्थ, पदार्थ विज्ञान के अनुकूल नहीं; न्यायाधिकरण और वाद विवादके लिये इनकी उपयोगिता हो सकती है। हमारे पदार्थ की परिभाषा में इनका समावेश नहीं होता। अतएव इस प्रसंग-के लिये हम अपने ही वर्णनको अलम् और उपयोगी समझते हैं।

साधर्म्य-वैधर्म्य

ऊपर जिन छः पदार्थों का वर्णन हुआ है, उससे उनके स्वरूपका निर्देश और विभाग आदि की बातें स्पष्ट हो गयी हैं। इन पदार्थों में कुछ ऐसे धर्म होते हैं जो सभी पदार्थोंमें विद्यमान हैं। जो सभीमें सामान्य हैं। उन्हें **केवलान्वयी** धर्म कहते हैं। इसे **सर्व पदार्थ वृत्ति** भी कह सकते हैं।

सप्तानामपि साधर्म्यं ज्ञेयत्वादिक मुच्यते।

अर्थात द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय तथा अभावको भी लें तो सातों पदार्थों में ज्ञेयत्व और अभिधेयत्व गुण सामान्य हैं। ज्ञेयत्वका यह अर्थ हुआ कि वे ज्ञान के विषय हो सकते हैं। उन्हें जाननेका प्रयत्न हो सकता है। अभिधेयत्व का यह अर्थ हुआ कि उनको नाम दिया जा सकता है। अभावको छोड़ अन्य छः में आस्तित्वका भी धर्म है। इसके सिवाय प्रथम छः पदार्थों में अभाव भी हो सकता है, अर्थात द्रव्य होगा तो द्रव्याभाव भी हो सकता है, गुणके साथ गुणाभाव भी हो सकता है, कर्मके साथ कर्माभाव, सामान्य के साथ सामान्याभाव, विशेषके साथ विशेषाभाव और समवाय के साथ समवायाभाव हो सकता है। **अस्तित्व** तो स्वरूप की सत्ताको कहते हैं। जो पदार्थ स्वरूपतः सत् नहीं हैं वह पदार्थ अप्रसिद्ध हैं। बिना अस्तित्वके पदार्थ कैसा? अतएव जब हम किसीक

पदार्थ स्वीकार करते हैं तव स्वरूपतः उसे सत् मानना पड़ेगा। अतएव सभी पदार्थों में स्वरूप सत्वरूप अस्तित्व होना ही चाहिये। कुछ लोगों की सम्मतिमें अस्तित्व **उभयावृत्तिधर्मवत्व** है। अर्थात जो धर्म दो वस्तुओंमें नहीं होता वैसे धर्म विशिष्टत्वको उभयावृत्तिधर्मवत्व कहेंगे। प्रत्येक पदार्थका पृथक पृथक व्यक्तित्व होता है। प्रतिव्यक्ति भेदसे द्रव्य भिन्न है। ऐसी दशामें उसमें पृथक पृथक व्यक्तित्व रहेगा ही। गुणादियोंका भी प्रतिगुणके भेदसे उनका व्यक्तित्व सभी स्वीकार करते हैं। ऐसी दशा में पृथक पृथक उस व्यक्तित्वको उभयावृत्तिधर्म पद मानकर प्रत्येक पदार्थ को ही उभयावृत्तिधर्मवत्व उपपादन किया जायगा, कहा जायगा। यह हुई अस्तित्व के सम्बन्ध की वात।

अभिधेयत्वके—सम्वन्धमें स्पष्ट है कि संसारमें जो कोई पदार्थ होगा उसके पदार्थवाची होनेका कोई नाम अर्थात अभिधेयवाची शव्द भी होगा ही। ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जिसका वाचक कोई शव्द न हो, कोई नाम न हो। यह और वात है कि किसी वस्तुका नाम हम न जानते हों; किन्तु यह निश्चित वात है कि ईश्वरने अपनी सृष्टि के सभी पदार्थों की एक एक संज्ञा निर्दिष्ट कर दी है। उक्त ईश्वर निर्दिष्ट संज्ञा द्वारा विज्ञपुरुषोंको उनके सम्वन्धमें वोध होता है, वे उनके सम्वन्धमें आवश्यक जानकारी प्राप्त करते हैं। अतएव प्रत्येक वस्तुका पद है ही अर्थात प्रत्येक पदार्थमें पदशक्यत्व रहता ही है। पदार्थ या वस्तु शव्द कहनेसे संसार की सभी वस्तुओं की प्रतीति होती है। अतएव इसके समझनेमें अव कठिनाई नहीं होगी कि प्रत्येक पदार्थका नाम अर्थात उसका अभिधेयत्व सभी पदार्थों में है।

ज्ञेयत्व—ज्ञान शब्दसे निकला है। सभी वस्तुके सम्बन्धमें ज्ञान अपेक्षित है, जानकारी आवश्यक है। सभी पदार्थ अन्ततः सर्वज्ञ ईश्वर के ज्ञानका विषयीभूत हो सकता है। अन्तिम ध्येय ईश्वर है। ईश्वरने किस पदार्थमें क्या विशेषता, क्या खूबी रखी है इसे जानने की इच्छा सभीको हो सकती है। ऐसे कई धर्म भी सभी पदार्थों में हैं, जिनकी खोज होनी चाहिये। जैसे गगनाभाव, आत्माभाव आदि। आकाश, आत्मा आदि विभु पदार्थ हैं, अवृत्ति हैं। अर्थात ये कहीं नहीं और सर्वत्र हैं। नहीं दिखते इसलिये इनका अभाव सर्वत्र कहा जा सकता है। इस प्रकारका ज्ञेयत्व अर्थात यथार्थज्ञानविषयत्व प्रभृति धर्म भी सभी पदार्थके धर्म हैं। सभी पदार्थों के विषयमें यथार्थ ज्ञान तो ईश्वरको ही है, यह बात बहुतन्त्र सिद्ध है। आकाश और ईश्वरका कोई आश्रय नहीं है। ऐसे नित्य द्रव्योंको छोड़ संसारके सभी पदार्थों में आश्रितत्व अथवा आधेयत्व धर्म है। कालकालिक सम्बन्धमें सभी वस्तुओंका आधार होता है। इस नियमकी रक्षा करनेके लिये नित्य द्रव्य कालिक सम्बन्ध में कालके आधेय स्वीकार किये जाते हैं तो भी यथार्थ में यदि कालिक सम्बन्धके अतिरिक्त अन्य सम्बन्धमें आश्रितत्व कहा जाय तो कोई दोष नहीं। नित्यद्रव्य अन्य किसी सम्बन्धमें कहीं नहीं रहते। अवृत्ति नित्य द्रव्य सम्बन्धी तो हो सकती हैं; किन्तु आधेय नहीं होता। इसलिये आश्रितत्वका अर्थ आधेयत्व किया जाता है। आधेयत्व और सम्बन्धित्व एक पदार्थ नहीं है। अवृत्ति पदार्थ में सम्बन्धित्व होता है, किन्तु आधेयत्व अर्थात वृत्तित्व नहीं होता। पदार्थोंके सम्बन्धमें इस प्रकार की जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता रहती है।

द्रव्यादि साधर्म्य—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और

विशेष इन द्रव्यादि पाँच पदार्थों के साधर्म्य के विषयमें भाषा परिच्छेदमें लिखा है—

द्रव्यादयः पञ्चभावा अनेके समवायिनः
सत्तावन्तास्त्रयस्त्वाद्या गुणादि निर्गुणः क्रियः।

द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य और विशेष इन पांचों भाव पदार्थों का समान धर्म अनेकत्व मिश्रित समवायित्व (अनेकत्व+समवायित्व)। अर्थात इन पदार्थोंका समवायित्व या यों कहिये कि समवेत वृत्ति भावविभाजक धर्मत्वत्व साधर्म्य है। द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य और विशेष ये पांचों पदार्थ समवेत अर्थात समवायि सम्बन्धमें वृत्तिमत हैं। उनमें वर्तमान भावविभाजक धर्म द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, सामान्यत्व और विशेपत्व है। समवाय पदार्थ समवेत नहीं हैं। अतएव समवायत्व समवेतवृत्ति भावविभाजक धर्म भी उसमें नहीं है। इसलिये अव्याप्ति अथवा अव्याप्तिका सन्देह भी नहीं हो सकता। समवायित्व पदका अर्थ समवायानुयोगित्व लिया जाता है। इस अर्थके अनुसार वह समान्य और विशेष पदार्थका साधर्म्य नहीं भी हो सकता। क्योंकि सामान्य और विशेष पदार्थमें कोई वस्तु समवाय सम्बन्धमें न हो तो उसमें समवाय सम्बन्धका अनुयोगित्व नहीं होगा। समवायका प्रतियोगित्व अर्थ करें तो भी नित्य द्रव्य कहीं समवाय सम्बन्ध में नहीं रहे तो समवायका प्रतियोगित्व उनमें असम्भव होनेसे वह नित्य द्रव्यका साधर्म्य नहीं हो सकता। कुछ लोगोंके मतमें उसका अर्थ समवायमें अवृत्तिधर्मवत-भावत्व है। समवायमें समवायावृत्ति धर्म नहीं होता और अभाव में भावत्व नहीं होता। इसलिये समवाय और अभावमें अति-व्याप्ति नहीं है। अतएव समवायका अर्थ समवाय-सम्बन्ध विशिष्टत्व अर्थ लेना चाहिये। द्रव्य गुण और कर्म समवाय सम्बन्धके

अनुयोगी तथा सामान्य और विशेष समवाय सम्बन्धके प्रतियोगी होनेके कारण समवायी कहे जाते हैं। अतएव समवाय साधर्म्य सिद्ध हुआ।

द्रव्यादि पाँचों पदार्थों में अनेकत्वका साधर्म्य है। अर्थात इनमें अनेकवृत्ति भावविभाजक धर्मवत्व साधर्म्य है। यों तो द्रव्यादि व्यक्तिभेदसे पृथक् पृथक् होनेसे किसी व्यक्तिमें अनेकत्व नहीं होता। अतएव असम्भव दोषकी उद्भावना हो सकती है; किन्तु यदि इसका अनेकवृत्ति-भावविभाजक धर्ममें अर्थ करें तो जो भावविभाजक धर्म एकातिरिक्त वस्तुमें रहता है उस प्रकार का यह पर्यवसित अर्थ पाया जायगा। तब द्रव्यत्वादिरूप अनेक वृत्ति भावविभाजक धर्म मानकर प्रत्येकका साधर्म्य संगत होगा। द्रव्य नौ प्रकारके, गुण ४१ प्रकारके, कर्म ५ प्रकारके, सामान्य तीन प्रकारके और विशेष अनन्त प्रकारके होते हैं। समवायत्व भावविभाजक होने पर भी वह एकमात्र समवायमें ही रहता है। इसलिये समवायमें अतिव्याप्ति नहीं हुई। अभाव अनेक वृत्ति धर्म होने पर भी वह भावविभाजक नहीं अतएव अभावमें भी अतिव्याप्ति नहीं हुई। अर्थात अनेकत्वका उसमें समारोप नहीं हुआ। अन्य पांचमें अनेकत्व धर्म समान है।

गुणादि साधर्म्य—गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवायमें निर्गुणत्व और निष्क्रियत्व ही साधर्म्य है। अर्थात वे सभी निर्गुण और निष्क्रिय हैं। क्योंकि इनका गुणत्व और कर्मत्व द्रव्यके अधीन रहता है। इसलिये निर्गुणत्वका अर्थ गुणवत-अवृत्तिधर्मवत्व लिया जायगा। अर्थात् जो धर्म गुणवान पदार्थ में वर्तमान नहीं रहता उसके समान। द्रव्यमें उत्पत्तिके समय गुण नहीं रहे तो भी इस अर्थके अनुसार द्रव्यमें

ातिव्याप्ति नहीं होती । क्योंकि कुछ समय बाद गुणकी त्पत्ति हो जाती है। इसलिये द्रव्यमें जो धर्म होते हैं उनकी ,णवतवृत्ति या गुणवत अवृत्ति कोई धर्म नहीं। निष्क्रियत्वका र्थ हुआ 'क्रियावद्वृत्ति भावविभाजक धर्मत्व' अर्थात् जो र्म क्रियावान पदार्थमें अर्थात द्रव्यमें वर्तमान नहीं होते उनके मान । विभु द्रव्य यद्यपि क्रियाशून्य होते हैं, किन्तु इ अर्थ से उनके सम्बन्धमें कोई हानि नहीं होती। क्योंकि नमें क्रिया न होने पर भी क्रियावतमें अवृत्ति कोई भाव-भाजक धर्म नहीं । भावविभाजक धर्मों में से केवल द्रव्यत्व ही विभुद्रव्योंमें रहता है । वह द्रव्यत्व मूर्त द्रव्यों में भी होता है ; इसलिये क्रियावतमें अवृत्ति नहीं होती। क्रिया-वतमें अवृत्ति भावविभाजक धर्म गुणत्वादि हैं। वे विभुद्रव्यों में भी (आकाश, काल, दिक, आत्मा, और मन) नहीं होते। अतएव अतिव्याप्ति दोष निवारित हुआ।

द्रव्यत्रयका साधर्म्य—द्रव्य-गुण और कर्ममें सत्ता नामका जातिसामान्यका साधर्म्य है। वैशेषिक दर्शनके अनुसार इनमें अर्थ शब्दवाच्यत्व भी रहता है। द्रव्यत्वादि रूपमें सामान्य और विशेषात्मक धर्मका भी साधर्म्य है। अदृष्टजनकभावत्व भी इन तीनोंका साधर्म्य है। द्रव्य-गुण-कर्ममें जो द्रव्य-गुण-कर्मके कारण हैं उनका कार्यत्व और अनित्यत्व साधर्म्य है। अनित्यत्वका अर्थ उनके विनाशीभाव समझना चाहिये।

सामान्यादि साधर्म्य—सामान्य, विशेष, समवाय, और अभाव इन चारोंका साधर्म्य इस बातको लेकर है कि ये सभी सामान्य हीन हैं, अर्थात् इनकी जाति नहीं होगी। परिमण्डलादि अर्थात परमाणु, द्वयणुक परिमाण, परम महत् परिमाण तथा आत्मा इनको छोड़कर अन्य पदार्थोंमें निमित्त कारणके

अतिरिक्त अन्य कारणोंका साधर्म्य है। इच्छा आदि कार्यों के लिये ज्ञानादि निमित्त कारण हैं; इसलिये उसे छोड़कर कहा गया है। नित्यद्रव्योंको छोड़ अन्य द्रव्योंमें द्रव्याश्रितत्व साधर्म्य है। उक्त द्रव्याश्रितत्व समवाय सम्बन्धमें द्रव्य वृत्ति सत्व समझें। परमाणुरूप नित्यद्रव्य संयोग सम्बन्धमें आश्रित हैं। इससे उनके समवाय सम्बन्धी आश्रितत्व न रहे तो भी हानि नहीं। सामान्य और विशेष समवाय सम्बन्धमें द्रव्याश्रित हैं तो भी उनमें **सत्ता** नामक जाति नहीं होती। इसलिये उनकी अतिव्याप्ति इसमें नहीं होती। अर्थात वे इसमें शामिल नहीं। सामान्य, विशेष और समवाय इन तीन पदार्थोंमें स्वात्मवत्व अर्थात स्वरूप सत्वका साधर्म्य है।

साधर्म्य-वैधर्म्य का निष्कर्ष—द्रव्य, गुण, कर्ममें सत्तानामक जाति है; परन्तु सामान्य, विशेष और समवायमें सत्ता जाति नहीं है। इन सामान्य-विशेष और समवायमें बुद्धिलक्षणत्व, बुद्धिमात्र जनकत्व अथवा बुद्ध्यन्यभावजनकावृत्ति, भावविभाजक धर्मवत्व भी नहीं हैं। ये सामान्यादि बुद्धिके प्रतिकारण तो हैं किन्तु बुद्धि भिन्न भाव कार्यके जनक नहीं हैं। द्रव्यादिमें द्रव्यत्वादिरूप भावविभाजक धर्म तो है; किन्तु वह बुद्ध्यान्य-भावजनककी वृत्ति नहीं। इसलिये द्रव्यादि की इस बुद्धिकार्यमें गणना नहीं। सामान्य पदार्थ अनुगत बुद्धिके प्रति विषय रूपमें, विशेष पदार्थ व्यावृत्त बुद्धिके प्रति लिंगरूपमें और समवाय प्रत्यक्ष बुद्धिके प्रति ही सन्निकर्ष रूपसे कारण हैं; किन्तु द्रव्यादि बुद्धिको छोड़ अन्य द्रव्योंके प्रति भी कारण हो सकते हैं। अकार्यत्व भी उनका साधर्म्य है। अकार्यत्वसे यहां मतलब प्रागभावके प्रतियोगी पदार्थमें अवृत्तिभावविभाजक धर्मवत्वसे है। यद्यपि नित्य द्रव्य और नित्य गुणोंमें अकार्यत्व अर्थात

ार्यत्वाभाव है किन्तु उक्त पदार्थोंमें द्रव्यत्व और गुणत्वरूप भावविभाजक धर्म है। इससे प्रागभावके प्रतियोगी अनित्य द्रव्य और गुणोंमें भी वृत्ति होनेसे उनके सम्बन्धमें अतिव्याप्ति नहीं अर्थात वे इससे अलग हैं। सामान्यादिमें आकारणत्वका भी साधर्म्य है अर्थात निमित्त कारणताके सिवाय अन्य कारणों का इनमें अभाव है। यद्यपि सामान्यादिमें ज्ञानादिकी निमित्त कारणता है तौ भी ऊपरके अर्थमें वाधा नहीं पड़ती। उनमें असामान्य विशेपत्व है, यह भी साधर्म्य है। असामान्य विशेपत्वका मतलव सत्ताकी न्यूनवृत्ति और जातिकी शून्यता है। अर्थात इसमें सत्ता तो है ही नहीं; सत्ताकी आवान्तर जाति भी नहीं है। सामान्यादिमें नित्यत्वका साधर्म्य है अर्थात ये सब नित्य हैं। अर्थात विनाशी पदार्थमें अवृत्ति भावविभाजक धर्म-वत्व है। अर्थ शब्द द्रव्य-गुण-कर्ममें ही रहता है; किन्तु सामान्य-विशेष और समवायमें अर्थ शब्द नहीं होता इस सम्बन्धमें उनकी साधर्म्यता है। द्रव्य और गुणमें सत्व साधर्म्य है, सामान्य और विशेपमें जातिशून्य समवेतत्व है। कर्ममें द्रव्य गुण भिन्न सत्व है। द्रव्यका गुण कर्म भिन्न सत्व साधर्म्य है। यहां तक दार्शनिक विधिसे भाव पदार्थोंका वर्णन हुआ। अब आगे द्रव्यादिका विवरण दिया जायगा।

इति

द्वितीयभाग समाप्त